ISSN No : 2583-3316

कृषि उद्यान दर्पण

Volume 2 : Issue 3 : December2022

Society for Advancement in Agriculture, Horticulture & Allied Sectors
SAAHAS

ISSN No. 2583-3146

कृषि उद्यान दर्पण

3/2, ड्रमण्ड रोड, (नथानी अस्पताल के सामने), प्रयागराज-211001, (U.P.) दूरभाष-9452254524
वेबसाइट : saahasindia.org, ई-मेल-contact.saahas@gmail.com
Article Submission :– krishiudyandarpan.hi@gmail.com

सम्पादकीय मण्डल

प्रधान संपादक	**डॉ. विवेक कुमार त्रिपाठी** प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, उद्यान विज्ञान विभाग एवं फल विज्ञान विभाग चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)
वरिष्ठ संपादक	**डॉ. रोशन लाल राऊत** वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं विभागाध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, बालाघाट (एम.पी.)
	डॉ. शुभम कुमार कुलश्रेष्ठ सहायक अध्यापक, उद्यान विज्ञान विभाग रविन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, रायसेन (मध्य प्रदेश)
सह सम्पादक गण	**डॉ. नीलम राव रंगारे** वैज्ञानिक, संस्था निदेशालय इन्दिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, लाभण्डी, रायपुर (छत्तीसगढ़)
	डॉ. नंगखाम जेम्स सिंह पशुचिकित्सक क्षेत्र सहायक,पशुपालन एवं डेयरी विभाग, शुआट्स, (उ.प्र.)
	प्रखर खरे एम.एस.सी. उद्यान विज्ञान विभाग, शुआट्स, प्रयागराज (उ.प्र.)
पांडुलिपि संपादक	**स्निग्धा हल्दर** सहायक संपादक, एग्रो इण्डिया पब्लिकेशन, प्रयागराज, (उ.प्र.)
कंटैट लेखक/ स्तंभ लेखक	**डॉ. विशाल नाथ पाण्डेय** विशेष कार्य अधिकारी आई.सी.ए.आर., आई.ए.आर.आई, झारखण्ड, हजारीबाग (झारखण्ड)
फोटोग्राफी	**स्वप्निल सुभाष स्वामी**
वेब एडिटर	**प्रितेश हलदार** प्रकाशक, एग्रो इण्डिया पब्लिकेशन, प्रयागराज, (उ.प्र.)

प्रकाशक **Society for Advancement in Agriculture, Horticulture & Allied Sectors (SAAHAS)**

ISSN No. 2583-3146

कृषि उद्यान दर्पण

इस पृष्ठ में

- ड्रिप एवं स्प्रिंकलर सिंचाई पद्धति की उद्यानिकी फसलों में उपयोगिता 1-4
- ककोड़ा की उन्नत खेती 5-6
- कीटनाशकों के प्रयोग से पहले एवं बाद में रखी जाने वाली सावधानियाँ 8-10
- आम के महत्वपूर्ण मूल्यवर्धित उत्पाद 11-15
- सूरजमुखी की खेती 16-18
- सब्जी फसलों में खड़ी खेती 19-23
- उत्तम मसाला बीज की सुधार के उपज के लिए सिंचाई समयबद्ध 24-28
- ड्रैगन फ्रूट की वैज्ञानिक खेती 29-32
- किवी फल की खेती 33-36

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखकों के निजी हैं। प्रकाशित/सम्पादक इसके लिये उत्तरदायी नहीं है। इस पत्रिका से सम्बन्धित वाद का निस्तारण क्षेत्र प्रयागराज होगा।*

ISSN No. 2583-3146

ड्रिप एवं स्प्रिंकलर सिंचाई पद्धति की उद्यानिकी फसलों में उपयोगिता

प्रमिला

उद्यान विज्ञान विभाग

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर

पत्राचारकर्ता : prmtca@gmail.com

परिचय

ड्रिप सिंचाई-पद्धति एक ऐसी विधि है, जिसमें पानी को बूँद-बूँद के रूप में पौधों की जड़ में उपलब्ध होता है। ड्रिप सिंचाई के अन्तर्गत प्लास्टिक पाइपों द्वारा पौधों की जड़ों में सीधा तथा समान रूप में सिंचाई एवं कम पानी का प्रयोग करके अधिक गुणवत्ता वाले उत्पाद प्राप्त किये जा सकते हैं। ड्रिप सिंचाई में जल के साथ-साथ उर्वरक तथा जल में घुलनशील अन्य आवश्यक रसायन भी सीधे पौधों तक पहुँचाये जा सकते हैं। इस प्रणाली के द्वारा जल की बचत के साथ-साथ उर्वरक की भी पर्याप्त बचत होती है। ये विधियाँ मृदा के प्रकार, खेत की ढाल, जल के स्रोत और किसान की योग्यता के अनुसार अधिकत्तर फसलों के लिए अपनाई जा सकती हैं। इस विधियों की सिंचाई-दक्षता 80-90 प्रतिशत हो सकती है। फसलों की पैदावार बढ़ने के साथ-साथ इन विधियों से उत्पाद की गुणवत्ता, रसायन एवं उर्वरकों का दक्ष उपयोग, जल के विक्षालन व अप्रवाह में कमी, खरपतवारों में कमी और जल की बचत सुनिश्चित की जा सकती है। सिंचाई की इन विधियों, जैसे-स्प्रिंकलर और ड्रिप का प्रयोग पूरे विश्व में तेजी से बढ़ रहा है। अतः सूक्ष्म सिंचाई के अन्तर्गत कृषि क्षेत्र में वृद्धि करना अनिवार्य हो चुका है। देश भर के किसान भाई भी इसे अपनाकर अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत कर सकते हैं। ड्रिप सिंचाई से भारतीय कृषि में उत्साहपूर्ण परिणाम प्राप्त हुए हैं। आज देश में इस विधि द्वारा 6,50,000 हेक्टर से अधिक भूमि की सिंचाई की जा रही है तथा इसके उपयोग से फलों के बाग, सब्जियाँ एवं फूलों में अच्छी पैदावार प्राप्त की जा रही है।

टपक ड्रिप सिंचाई का विकास

टपक सिंचाई का उद्‌भव सन् 1860 ई. में जर्मनी में हुआ। जर्मन वैज्ञानिकों ने जमीन के नीचे पाईप डालकर सिंचाई करने के लिये टपक सिंचाई तंत्र का विकास किया।

जमीन के नीचे पाईप डालकर सिंचाई करने के लिए टपक सिंचाई तंत्र का विकास किया गया। जर्मनी में ही वैज्ञानिकों ने सन् 1920 ई. में पाइपों में छिद्र बनाकर टपक सिंचाई के विकास में महत्तवपूर्ण योगदान दिया। भारत में टपक सिंचाई का उपयोग विभिन्न रूपों में बहुत पुराने समय से होता आ रहा है। जैसे उत्तरी भारत में घड़े में जल भर कर उसकी पेंदी में एक छोटा छेद करके पौधों की जड़ों के पास रख देते थे और इसी प्रकार पूर्वोत्तर राज्यों में किसान बांस से बना टपक सिंचाई तन्त्र लम्बे समय से प्रयोग करते आ रहे हैं। भारत में टपक सिंचाई तन्त्र का प्रयोग सन् 1970 ई. में प्रारम्भ हुआ और इस तन्त्र को किसानों तक पहुँचाने के लिए प्रथम प्रयास सन् 1980 ई. में किया गया। टपक सिंचाई का व्यावसायिक रूप में प्रोत्साहन आठवी पंचवर्षीय योजना के दौरान भारत सरकार द्वारा कृषि में 'प्लास्टिक का उपयोग' नामक परियोजना से प्रारम्भ किया गया।

सूक्ष्म सिंचाई पद्धति से लाभ एवं विशेषतायें

(क) ड्रिप सिंचाई-पद्धति

- इस पद्धति द्वारा पानी का केवल पौधों की जड़ों में ही वितरण होता है। अतः पानी की निश्चित बचत होने से अधिक क्षेत्रों में सिंचाई संभव हो जाती है।
- अधिक उपज एवं समय से पहले फसल का तैयार हो जाती है।
- इस पद्धति मे पानी देने के लिये नालियाँ बनाने की आवश्यकता नहीं होने से श्रम एवं खर्च में बचत होती है।
- पोषक तत्वों, पानी एवं हवा का पौधों की जड़ों में समुचित सम्मिश्रण संभव है, अतः पैदावार तथा उसकी गुणवत्ताा में अविश्वसनीय वृद्धि हो सकती है।
- केवल जड़ों को ही पानी देने से खर-पतवार नियन्त्रण होने के कारण खर-पतवार की समस्या दूर हो जाती है।

- ड्रिप सिस्टम द्वारा पौधों की जड़ों में ही खाद का एकसमान वितरण संभव होने से रसायन की बचत होती है।
- लवणीय भूमि में भी खेती हो सकती है।
- सिंचाई के लिए लवणीय जल भी उपयोगी हो सकता है।
- इस पद्धति से यदि खेत समतल नहीं है अर्थात् ऊबड़-खाबड़ है, तब भी पौधों की सिंचाई भली प्रकार से की जा सकती है।

(ख) छिड़काव (माइक्रोस्पिंकलर) पद्धति

- माइक्रोस्पिंकलर पद्धति द्वारा पौधों की जड़ों में एकसार (एक समान) खाद-वितरण संभव हो पाता है।
- पानी देने के लिए नालियाँ बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। अतः श्रम एवं खर्च में बचत हो जाती है।
- अनोखी बायोनेट कपलिंग।
- विशिष्ट प्लास्टिक से निर्मित होने के कारण लम्बी अवधि तक समस्या रहित कार्य।
- इस पद्धति के द्वारा एकसार (एक समान) जल-वितरण हो जाता है।
- छिड़काव पद्धति द्वारा विभिन्न प्रकार की नोजल द्वारा 23 ली./घं. की दर से 333 ली./घं. जल-वितरण सम्भव है।

ड्रिप सिंचाई एवं सतही सिंचाई विधि में अन्तर

जल की बचत : ड्रिप सिंचाई के द्वारा 70 प्रतिशत जल की बचत होती है, जबकि सतही सिंचाई में जल का बड़ा हिस्सा वाष्पन एवं रिसाव में व्यर्थ हो जाता है।

जल के उपयोग की दक्षता : ड्रिप सिंचाई के द्वारा 80 से 90 प्रतिशत जल का उपयोग होता है, जबकि सतही सिंचाई में केवल 30-40 प्रतिशत ही जल का उपयोग होता है, क्योंकि अधिकतर जल फसल तक पहुँचने के पहले और वितरण में व्यर्थ हो जाते हैं।

श्रम की बचत : ड्रिप चलाने में बहुत कम श्रम की आवश्यकता होती है, जबकि सतही सिंचाई में अपेक्षाकृत अधिक श्रम की आवश्यकता होती है।

खर-पतवार की समस्या : ड्रिप सिंचाई में खर-पतवार भी नियंत्रित रहता है जबकि सतही सिंचाई में खर-पतवार की मात्रा अधिक होती है।

खराब मृदाओं में उपयुक्तता : ड्रिप सिंचाई को सब प्रकार की मृदाओं की सिंचाई के उपयोग किया जा सकता है जबकि सतही सिंचाई से खराब मृदाओं में सिंचाई करना संभव नहीं है।

जल का नियंत्रण : ड्रिप सिंचाई से जल का नियंत्रण बिल्कुल सही और सरल ढंग से संभव है जबकि सतही सिंचाई में जल का वितरण एवं नियंत्रण कम होता है।

उर्वरक उपयोग की दक्षता : ड्रिप सिंचाई के द्वारा पोषक तत्तव नष्ट नहीं होते हैं, इसलिए उर्वरक के उपयोग की दक्षता बढ़ जाती है जबकि सतही सिंचाई द्वारा पोषक तत्तव नष्ट हो जाते हैं इसलिए उनके उपयोग की दक्षता कम होती है।

भू-क्षरण : ड्रिप सिंचाई के द्वारा भू-क्षरण कम होता है जबकि सतही सिंचाई के द्वारा भू-क्षरण अधिक होता है।

उपज में बढ़ोतरी : ड्रिप सिंचाई के द्वारा पौधों की वृद्धि अधिक होती है, जिससे उपज 50-100 प्रतिशत तक बढ़ सकती है जबकि सतही सिंचाई के द्वारा उपज का प्रतिशत कम होता है।

ड्रिप संयन्त्र

ड्रिप संयन्त्र बागों में पानी के मुख्य स्त्रोत से पौधों की जड़ों तक कुछ विभिन्न आकार-प्रकार एवं क्षमता वाले प्लास्टिक की पाइपों की सहायता से पूरे खेत/बाग में जाल-सा बिछाकर कुछ अन्य उपकरण जैसे ड्रिपर/इमिटर, स्क्रन फिल्टर, बालू छन्नक (सैन्डफिल्टर), गेट वाल्ब, सेन्चुरी आदि को लगाकर बूँद-बूँद पानी उपलब्ध कराये जाने की पद्धति को ही ड्रिप संयन्त्र के नाम से जाना जाता है।

ड्रिप सिंचाई के प्रकार

(अ) सतही ड्रिप सिंचाई : इसमें लैटरल पाइपों को जमीन पर बिछाते हैं और ड्रिपरों को लैटरल पाइप में छेद करके ड्रिपर को लगा देते हैं। ड्रिपरों से जल बूँद-बूँद करके पौधों की जड़ों के आस-पास गिरता है। ड्रिपरों में जल-प्रवाह 2 से 20 ली. प्रति घंटा होता है। आवश्यकतानुसार ड्रिपरों की जगह अति सूक्ष्म नलिकाओं (माइक्रोट्यूब) का भी प्रयोग जल-उत्सर्जन के लिए किया जा सकता है।

(ब) उप-सहती ड्रिप सिंचाई : इसमें लैटरल पाइपों को जड़ों के साथ-साथ जमीन के नीचे बिछाते हैं, जो फसल को आवश्यकतानुसार जल उपलब्ध कराते हैं। लैटरल पाइपों में लगे ड्रिपरों द्वारा जल निकलता है। लैटरल पाइपों का निर्माण

ISSN No. 2583-3146

करते समय ही उनके अन्दर ड्रिपरों को भी लगाया जा सकता है। उप-सतही ड्रिप सिंचाई में केवल उप-सतह नम होती है और मृदा की ऊपरी सहत सूखी रहती है। उप-सतही सिंचाई में वाष्पोत्सर्जन से होने वाली जल-हानि बहुत कम होती है। मृदा की ऊपरी सतह सूखी रहने के कारण खरपतवारों की वृद्धि भी नहीं होती है।

(स) बुलबुला ड्रिप सिंचाई : ड्रिप सिंचाई की इस विधि में जल दबाव के कारण सूक्ष्म जलधारा की तरह निकलता है, जिसके फलस्वरूप बुलबुले उत्पन्न होते हैं और जल का उत्सर्जन ड्रिपरों के प्रस्राव की तुलना में कई गुना अधिक होता है। बुलबुला ड्रिप सिंचाई विधि में उपमुख्य और लैटरल पाइपों के स्थान पर केवल मुख्य पाइप होता है। बुलबुला विधि से सिंचाई अभी तक भारत में प्रचलित नहीं है।

ड्रिप सिंचाई-पद्धति में प्रयोग होने वाले मुख्य घटक

क. मुख्य पाइप लाइन : मुख्य पाइप लाइन जो कि पी.वी.सी. या एच.डी.पी.ई. से बना होता है, जमीन से सामान्यतः 2 फुट की गहराई में रहता है। मुख्य पाइप लाइन का मुख्य कार्य पानी के स्रोत को सहायक मुख्य पाइप लाइन से जोड़ना होता है। 65 मिली मीटर या अधिक और 4 से 10 कि.ग्रा. प्रति वर्ग से.मी. दबाव-क्षमता की पाइपों की प्रति मीटर कीमत पाइप के व्यास पर निर्भर करती है इसलिए उपयुक्त व्यास के पाइप का ही चयन करना चाहिये।

ख. उप-मुख्य पाइप लाइन : यह पी.वी.सी. या एच.डी.पी.ई. से बना होता है, जो कि मुख्य पाइप लाइन की तरह ही 2 फुट की गहराई में रहता है। सब मेन उपमुख्य पाइप का मुख्य कार्य मुख्य पाइप से पानी लेकर लैटरल पाइप को पानी पहुँचाना होता है। 32 से 75 मिली. मीटर व्यास और 2.5 से 6.0 कि.ग्रा. प्रति से.मी. दबाव क्षमता की पाइपों का उपमुख्य पाइप के रूप में प्रयोग होता है।

मेन (मुख्य) पाइप लाइन तथा सबमेन (उप-मुख्य) पाइप लाइनों की फिटिंग्स : इन लाइनों में फिटिंग्स जैसे-टी, एलबो, रिड्यूसर, सॉकेट और प्रक्षालन वाल्ब का प्रयोग किया जाता है। ड्रिप सिंचाई में पी.वी.सी. पाइपों को सीमेन्ट घोल से जोड़ा जाता है।

ग. लेटरल पाइप लाइन (उप-मुख्य पाइप से पतले काले प्लास्टिक की पाइप पौधों की कतारों के साथ-साथ डाली जाती है) : यह एल.एल.डी.पी.ई. से निर्मित होती है तथा इन पाइपों पर धूप का असर यू.भी.स्टेबलाईजर होने के कारण नहीं पड़ता है। इन पाइपों को उपमुख्य पाइप लाइन से जोड़ दिया जाता है तथा ड्रिपर्स/माइक्रोस्प्रिंकलर को लेटरल पाइप से जोड़ दिया जाता है। बाजार में 10, 12 तथा 16 मिलीमीटर व्यास की लैटरल पाइप उपलब्ध हैं। लैटरल पाइपों में प्रयोग होने वाली प्लास्टिक की मोटाई 1 से 3 मिलीमीटर और दबाव क्षमता 2-5 कि.ग्रा. प्रति से.मी. तक होती है। लैटरल पाइप लचीला, जंग न लगने वाला और सूर्य के प्रकाश के प्रतिरोधी होनी चाहिये।

लैटरल पाइप में प्रयोग होने वाली फिटिंग : लैटरल पाइपों में जल के प्रवाह को नियंत्रित करने के लिए एच.डी.पी.ई.

विभिन्न मुख्य तथा उप-मुख्य पाइपों के न्यूनतम व्यास और दबाव सहने की क्षमता

पाइप का व्यास (मिली.मीटर)	पाइप दबाव (कि.ग्रा. प्रति वर्ग से.मी.)	पाइप का व्यास (मिली.मीटर)	पाइप दबाव (कि.ग्रा.)
40	6.0	110	10.0
50	6.0	122	2.5
50	10.0	125	6.0
63	4.0	140	2.5
63	6.0	140	4.0
75	4.0	140	6.0
90	4.0	160	2.5
90	10.0	160	4.0
110	4.0	160	6.0
110	6.0	160	10.0

प्लास्टिक के बने वाल्व का प्रयोग किया जाता है। दिशा-परिवर्त्तान के लिए एच.डी.पी.ई. से बने एलबो बटी का प्रयोग किया जाता है। लैटरल पाइपों के खुले सिटों से जल-प्रवाह को रोकने के लिए एण्ड कैप लगाए जाते हैं।

नोट : प्रति सप्ताह या आवश्यकतानुसार एण्ड कैपों को खोलकर पूरे दबाव से जल प्रवाहित किया जाता है, जिससे लैटरल पाइपों की जमी गन्दगी जल के तेज प्रवाह के साथ बाहर निकल जाती है। ऐसा करने से ड्रिपर्स और पाइपों में सामान्य प्रकार के अवरोधन की समस्या का निदान हो जाता है। सफाई करने के बाद पुनः एण्ड कैप लगाकर पाइप बन्द कर देते हैं। लैटरल पाइप में यदि किसी प्रकार का छिद्र हो जाए या ड्रिपर हटाया गया हो तो जल बहाव को रोकने के लिए गूफ प्लग का प्रयोग करना चाहिये। गूफ प्लग प्लास्टिक के बने होते हैं।

अ. ड्रिपर्स/माइक्रो ट्यूब व माइक्रो स्प्रिंकलर्स : यह पॉली-प्रोपीलीन प्लास्टिक से बना होता है जिसको कि लेटरल पाइप से जोड़ दिया जाता है। इसके माध्यम से पौधे की जड़ में पानी सीधे पहुँचाया जाता है। ड्रिपरों की बनावट और उनको लैटरल में लगाने के तरीके के आधार पर ड्रिपर्स को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है - (1) लैटरल पाइप के ऊपर लगने वाले ड्रिपर और लैटरल पाइप में अन्दर लगने वाले ड्रिपर। ड्रिपर्स 2, 4 व 8 लीटर प्रति घंटा की क्षमताओं के होते हैं। ड्रिपर्स की संख्या पौधों की जल-आवश्यकता के आधार पर रखी जाती है।

माइक्रो ट्यूब अत्यन्त छोटे व्यास की एल.एल.डी.पी.ई. पदार्थ की नलिकायें होती हैं। यह लैटरल पाइपों से जल-उत्सर्जन के लिए ड्रिपरों की तरह प्रयोग में लाई जा सकती है। 6 से 8 मिली. मीटर व्यास तक की नलिकायें सामान्यतः माइक्रो ट्यूब की तरह प्रयोग में लाई जाती है।

ब. माइक्रो स्प्रिंकलर : माइक्रोस्प्रिंकलर के द्वारा प्राकृतिक वर्षा की फुहारों की तरह सिंचाई होती है। इस विधि के द्वारा पौधे की सम्पूर्ण जड़ों को पानी एक साथ दिया जात है।

स. फिल्टर्स (छन्नक) : फिल्टर का मुख्य कार्य जल-स्त्रोत से आने वाले पानी को मेन पाइप लाइन में भेजने से पूर्व साफ करना होता है। सामान्यतः स्क्रीन फिल्टर काम में लाया जाता है, किन्तु यदि अशुद्धियों की मात्रा अधिक हो तो सैण्ड फिल्टर का प्रयोग किया जाता है। प्रयोग होने वाले फिल्टर का प्रकार, जल की गुणवत्ता और तंत्र के संचालन दबाव पर निर्भर होता है।

द. बाई पास एसेम्बली : यदि जल-स्त्रोत से आवश्यकता से अधिक जल प्राप्त हो रहा है, तो बाई पास एसेम्बली के माध्यम से अवशेष जल को अन्यत्र प्रयोग किया जा सकता है।

य. उर्वरक (मिश्रण) युनिट : इस यूनिट के द्वारा जल के साथ-साथ उर्वरकों को भी सीधे पौधे के पास तक पहुँचाया जा सकता है। इसके लिए तरल उर्वरकों को उर्वरक अन्तः क्षेपक यंत्र द्वारा सिंचाई के जल में मिलाकर पौधों की जड़ों को दिया जाता है। इसमें जल की बचत के साथ-साथ उर्वरकों की भी बचत होती है। दबाव नियंत्रक वाल्व की सहायकता से उर्वरक विलयन की अन्तःक्षेपण-दर को आवश्यकतानुसार कम या अधिक किया जा सकता है।

र. पम्प और मोटर : जल-स्त्रोत से जल उठाने के लिए मोटर और पम्प का प्रयोग किया जाता है। पम्प की क्षमता का निर्धारण फसलों की जलावश्यकता, खेत का क्षेत्रफल और प्रति सिंचाई में लगने वाले समय के अनुसार किया जाता है। मोटर की शक्ति का निर्धारण ड्रिप सिंचाई तंत्र में आवश्यक दबाव-स्त्रोत में जल की गहराई और ड्रिप सिंचाई यूनिट से मोटर की दूरी के अनुसार करते हैं।

❖❖

ISSN No. 2583-3146

ककोड़ा की उन्नत खेती

रमेश अमूले[1*], आर.एल. राऊत[2] एवं एस.आर. धुवारे[3]

कृषि विज्ञान केन्द्र, बड़गांव, बालाघाट

जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर

पत्राचारकर्ता : rameshamule@gmail.com

परिचय

ककोड़ा (खेखसा) एक बहुवर्षीय कद्दूवर्गीय सब्जी है, जिसे भारत के कुछ क्षेत्रों में उगाया जाता है। ककोड़ा, को काटवल, परोड़ा, खेक्सी या सेक्सी के नाम से भी जाना जाता हैं। ककोड़ा का वैज्ञानिक नाम *मोमोड्रिका डायोइका (Momordica dioica)* है और यह कुकुरबिटेसी (Cucurbitaceous) कुल से सम्बन्ध रखता है। जंगली क्षेत्रों में स्वयं उगते हुए देखे जा सकते हैं, इसलिए इन क्षेत्रों के आस-पास के लोग इसकी सब्जी के रूप में बहुतायत से उपयोग करते हैं। ककोड़ा के बीज को एक बार लगाने के बाद इसके मादा पौधे से लगभग 8-10 वर्षों तक फल प्राप्त होते रहते हैं। यह स्वाद में अधिक स्वादिष्ट और पोषक तत्व से भरपूर सब्जी है, जिस वजह से इसका बाजार मूल्य काफी अच्छा होता है। कृषकों के लिए यह एक अच्छी कमाई का साधन भी है, जिस वजह से ककोड़ा की खेती मुनाफे की खेती भी कही जाती है। ककोड़ा के फलों का उपयोग अचार बनाने के लिए भी किया जाता है। यह कफ, खांसी, अरूचि, वात, पित्तनाशक और हृदय में होने वाले दर्द से राहत दिलाता है। इसकी जड़ों का उपयोग बवासीर में रक्त बहाव रोकने के लिए, पेशाब की शिकायत व बुखार होने पर बहुत लाभकारी होता है। ककोड़ा के फलों का सेवन करने से मधुमेह रोगी के शर्करा नियंत्रण में भी बहुत उपयोगी है।

किसानों को ककोड़ा की खेती का प्रशिक्षण देते हुए कृषि विज्ञान केन्द्र बालाघाट के वैज्ञानिक

जलवायु

ककोड़ा गर्म और कम सर्द मौसम की फसल है। इस सब्जी की खेती उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय दोनों क्षेत्रों में की जा सकती है। इस फसल को बेहतर विकास और उपज के लिए अच्छी धूप की आवश्यकता होती है। इसकी खेती के लिए 27 से 32 डिग्री सेल्सियस का तापमान उपयुक्त है।

भूमि का चुनाव

ककोड़ा की खेती विभिन्न प्रकार की मिट्टी में उगाई जा सकती है। परन्तु इसकी खेती रेतीली भूमि, जिसमें पर्याप्त मात्रा में जैविक पदार्थ हो तथा जल निकास की उचित व्यवस्था हो, अच्छी रहती है। इसके साथ ही मृदा का पी.एच. मान 6-7 के बीच होना चाहिए। ककोड़ा अम्लीय भूमि के प्रति संवेदनशील होती है।

बुवाई समय

ककोड़ा के बीजों की बुवाई का समय जून-जुलाई है। बीज के साथ-साथ ककोड़ा का प्रर्वधन उसके वानस्पतिक अंगों से भी किया जाता है। बीजों के द्वारा प्रवर्धन से 1:1 के अनुपात में नर व मादा पौधे मिलते हैं। इसलिए ककोड़ा की फसल के लिए बीजों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। ककोड़ा की खेती से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए प्रर्वधन वानस्पतिक भाग अर्थात् जड़ के कन्द द्वारा करना चाहिए।

ISSN No. 2583-3146

किस्में

Indira kankoda I (RMF 37) एक नई व्यावसायिक किस्म है, जिसे इंदिरा गाँधी कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित किया गया है। इस किस्म की खेती उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, झारखंड और महाराष्ट्र में की जा सकती है। यह बेहतर किस्म सभी प्रमुख कीटों और कीड़ों के लिए प्रतिरोधी है। यह तुड़ाई के लिए 35 से 40 दिन में तैयार हो जाती है। यदि इसके बीजों को ट्यूबर्स में उगाते हैं तो यह 70 से 80 दिन में तैयार हो जाती है। इस किस्म की औसतन उपज पहले साल 4 क्विंटल/एकड़ है, दुसरे साल 6 क्विंटल/एकड़ और तीसरे साल 8 क्विंटल/एकड़ होती है।

बीज मात्रा

सही बीज जिसमें कम से कम 70-80 प्रतिशत तक अंकुरण की क्षमता हो। ऐसे बीज की 8-10 किग्रा. प्रति हेक्टेयर आवश्यकता होती है। कंद से रोपण के लिये 10,000 कंद प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती हैं।

बिजाई और अन्तरण

तैयार बेड में 2 सेंटीमीटर की गहराई में 2 से 3 बीज बोएं, मेड़ से मेड़ का फासला लगभग 1 मीटर या पौधे से पौधे का फासला लगभग 1 मीटर होना चाहिए।

बुवाई विधि

ककोड़ा की फसल से अच्छा उत्पादन प्राप्त करने के लिए खेत में पौधों की संख्या पर्याप्त होना आवश्यक है। इस फसल की बुवाई अच्छी प्रकार तैयार खेत में क्यारी बनाकर अथवा गड्ढों में किया जाता है। गड्ढे की आपस में दूरी 1-1 मीटर रखनी चाहिए तथा प्रत्येक गड्ढे में 2-3 बीज की बुवाई करते है, जिसमें बीच वाले गड्ढे में नर पौधा रखते हैं तथा बाकी गड्ढों में मादा पौधों को रखते हैं। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि एक गड्ढे में एक ही पौधा रखा जाता है।

खाद व उर्वरक

ककोड़ा की खेती से अधिक लाभ लेने के लिए संतुलित पोषण दें। सामान्यतया 200 से 250 क्विंटल प्रति हेक्टेयर अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद खेत की अंतिम जुताई के समय खेत में डालकर मिट्टी में मिला देना चाहिए। इसके अलावा 65 कि.ग्रा. यूरिया, 375 कि.ग्रा. एस.एस.पी तथा 67 कि.ग्रा. एम.ओ.पी. प्रति हे. देना चाहिए।

सिंचाई, निड़ाई-गुड़ाई व खरपतवार नियंत्रण

फसल की बुवाई के तुरन्त बाद खेत में हल्की सिंचाई करनी चाहिए। बरसात में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती, परन्तु दो वर्षा के समय में अधिक अन्तर होने पर सिंचाई करनी चाहिए। खेत में आवश्यकता से अधिक पानी को बाहर निकालने के लिए जल निकास की भी व्यवस्था होनी चाहिए क्योंकि अधिक पानी से बीज या कन्द सड़ सकता है। ककोड़ा

की फसल में खरपतवार नियंत्रण की अधिक जरूरत नहीं होती हैं। परन्तु खेत खरपतवार रहित रहना चाहियें, इसकी फसल में केवल दो से तीन गुड़ाई की जरूरत होती हैं। बेल को सहारा देने के लिये उचित व्यवस्था करना अत्यंत आवश्यक हैं।

प्रमुख कीट व रोकथाम

इस पर बहुत कम कीट व व्याधियों का प्रकोप होता है। परन्तु फल मक्खी ककोड़ा के फलों को अधिक नुकसान पहुंचाते हैं। रोकथाम के लिए इमिडाक्लोप्रिड या इन्डोक्साकार्ब 14.5 एस.सी. की 1.5-2.0 मि.ली. मात्रा प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव कर फसल की सुरक्षा की जा सकती है।

पौधों को सहारा (स्टेकिंग) देना

ककोड़ा से अधिक उपज प्राप्त करने के लिए पौधों को

सहारा देना आवश्यक है। स्टेकिंग करने से पौधों की बढ़वार अच्छी होती है तथा गुणवत्ता युक्त फल प्राप्त करने के लिए बांस या सूखी लकडियों की टहनी आदि से सहारा देना आवश्यक होता है। ककोड़ा एक बहुवर्षीय फसल है इसलिए पौधों को सहारा देने के लिए लोहे के एंगल पर जालीनुमा तार 5-6 फीट ऊंची, 4 फीट गोलाकार संरचना का उपयोग कर सकते हैं, जिससे अधिक फल प्राप्त कर सकते हैं।

ककोड़ा के फसल की कटाई (Kakoda Crop Harvesting)

ककोड़ा के फसल की कटाई व्यापारिक उद्देश्य और गुणवत्ता के अनुसार की जाती हैं। सब्जी के रूप में ककोड़ा की पहली कटाई दो से तीन माह पश्चात् की जा सकती हैं। इस दौरान आपको ताजे स्वस्थ और छोटे आकार के ककोड़ा की फसल मिल जाती हैं। इसके अलावा फसल की कटाई एक वर्ष बाद भी की जा सकती है, इस दौरान फसल की गुणवत्ता काफी अच्छी पायी जाती हैं। अच्छी गुणवत्ता वाले ककोड़ा की मांग बाजारो में काफी अधिक रहती हैं। ककोड़ा का बाजारी [illegible] 150/-रूपयें या उससे भी अधिक हो सकता हैं। इस हिसाब से किसान भाई ककोड़ा की एक बार की फसल से अच्छी कमाई करते हैं। यह सब्जी बिजाई के 70 से 80 दिन में कटाई के लिए तैयार हो जाती है। यह दूसरे वर्ष में 35 से 40 दिनों में तैयार हो जाती हैं।

निष्कर्ष

यह स्वाद में अधिक स्वादिष्ट और पोषक तत्वों से भरपूर सब्जी है, जिस वजह से इसका बाजारी भाव काफी अच्छा होता है। किसान भाइयों के लिए यह एक अच्छी कमाई का साधन भी है। जिस वजह से ककोड़ा की खेती मुनाफे की खेती भी कही जाती है। ककोड़ा अपने औषधीय गुणों के लिए भी जाना जाता है।

❖❖

ISSN No. 2583-3146

कीटनाशकों के प्रयोग से पहले एवं बाद में रखी जाने वाली सावधानियाँ

सुभम कुमार

कृषि विभाग, जे .बी.आई.टी. कॉलेज ऑफ अप्लाइड साइंसेज, देहरादून

पत्राचारकर्ता : subhamkumarpp12@gmail.com

परिचय

आजकल सभी प्रकार की फसलों में रासायनिक कीटनाशकों का ही प्रयोग किया जा रहा है। आपको यह जानकार भी आश्चर्य होगा कि भारत में प्रति वर्ष दस हजार से ज्यादा लोगों की मौत रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग से होती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार मौतों के लिए जिम्मेदार श्रेणी-1 के कीटनाशक है। रासायनिक कीटनाशक लाभदायक मित्र कीटों की संख्या में भी काफी कमी ला देते हैं। ऐसे में कीटनाशकों का इस्तेमाल सुरक्षित तरीके से करने की और किसानों को जागरूक करने की भी जरूरत है।

उन्नत खेती के लिए उन्नत बीज, संतुलित उर्वरक, निराई-गुडाई, समय पर सिंचाई आदि की जरूरत होती है। परन्तु अगर कीट नियंत्रण सुरक्षित रूप से नहीं किया जाए तो पैदावार में गिरावट भी हो सकती है। कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग से प्रदूषण तो बढ़ता ही है, साथ ही साथ लाभदायक मित्र कीटों की संख्या में भी काफी कमी आती है एवं कीटों में कीटनाशकों के प्रति प्रतिरोधकता भी पैदा होती है। इसके अतिरिक्त फसल जलना, मनुष्य व जानवरों की मृत्यु होना भी पाया गया है। अतः कीटनाशकों का इस्तेमाल सुरक्षित तरीकें से करना अति आवश्यक है।

किसानो के लिए फसल बहुत अहमियत रखती है, वह अपनी फसल को सुरक्षित रखने के लिए कई तरह के उपायों को प्रयोग में लाता है। फसल को सुरक्षित रखने और उन्हें होने वाली हानियों से बचाने के लिए कई तरह की दवाइयाँ और कीटनाशक बाजार में उपस्थित है, जिन्हे किसान खरीदकर उपयोग में ला सकते है, किन्तु बहुत से किसानो को इन कीटनाशक और दवाइयों के नाम नहीं पता होते है, जिस वजह से किसानो को दवाइयों को खरीदने में भी दिक्कत होती है। इसलिए इन कीटनाशकों के नाम को जानना भी उतना ही जरूरी होता है।

कीटनाशकों के प्रयोग से पहले बरते जाने वाली सावधानियाँ

- कीटों की अच्छी तरह पहचान कर लेनी चाहिए । यदि पहचान सम्भव नहीं हो पा रही हो, तो स्थानीय स्तर पर उपस्थित विशेषज्ञ से कीट की पहचान करा कर कीट की किस्म के अनुरूप ही रसायन क्रय करने चाहिए ।
- कीटनाशकों का प्रयोग तभी करना चाहिए जब कीट से आर्थिक नुकसान की क्षति निम्न स्तर की सीमा से बढ़ गयी हो।
- कीट को मारने का सही उपाय एवं समय पता कर लेना चाहिये।
- कीटनाशकों के विषाक्तता को प्रदर्शित करने के लिए कीटनाशक के डिब्बों पर तिकोने आकार का हरा, नीला, पीला अथवा लाल रंग का निशान बना होता है। जब कई कीटनाशी उपलब्ध हों, तो सबसे पहले लाल निशान वाले कीटनाशी का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि लाल निशान के कीटनाशक समस्त स्तनधारियों पर सबसे अधिक नुकसान करते हैं। लाल निशान वाले कीटनाशी की अपेक्षा पीले रंग के निशान वाले कीटनाशी कम तथा पीले रंग के कीटनाशी की अपेक्षा नीले रंग के निशान वाले कीटनाशी कम नुकसान पहुँचाते हैं। सबसे कम नुकसान हरे रंग के निशान वाले कीटनाशी से होता है।
- कीटनाशक खरीदते समय हमेशा उसके उत्पादन तिथि एवं उपयोग करने की अंतिम तिथि को अवश्य पढ़ लेना चाहिए ताकि पुरानी दवा को खरीदने से बचा जा सके, क्योंकि पुरानी दवा कम अथवा नहीं के बराबर असरदार हो सकती है, जिससे आर्थिक नुकसान से बचा जा सकता है।
- कीटनाशी के पैकिंग के साथ एक उपयोग करने के लिए पुस्तिका अर्थात लीफलेट भी आता है, जिसे ध्यान पूर्वक

पढ़ना आवश्यक है, जिसमें उपयोग का तरीका तथा मात्रा भी अंकित होती है ।

- कीटनाशकों का भण्डारण हमेशा साफ-सुथरी एवं हवादार तथा सूखे स्थान पर करना चाहिए।
- यदि अलग-अलग समूहों के कीटनाशकों का प्रयोग करना है तो एक के बाद दूसरे का प्रयोग करना चाहिए।
- ऐसे कीटनाशकों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, जिसके प्रयोग से पत्तों में रसायनिक अम्ल बनता हो।

कीटनाशकों के प्रयोग करते समय बरते जाने वाली सावधानियाँ

- शरीर को पूरी तरह से बचाने वाले कपड़े ठीक ढंग से पहन लेने चाहिए, जिससे यदि उसमें कीटनाशी लग भी जाए तो बदल कर दूसरे कपड़े पहन सकें तथा हाथों में रबर के दस्ताने अवश्य पहनने चाहिए तथा मुँह पर मास्क लगा होना चाहिए। आँखों की सुरक्षा के लिए चश्मा लगा लेना चाहिए ।
- कीटनाशी छिड़कने वाले को छिड़काव की पूरी जानकारी होनी चाहिए तथा उसके शरीर पर कोई घाव भी नहीं होना चाहिए तथा छिड़काव के समय चलने वाली हवा से बचना चाहिये।
- बहुत जहरीले कीटनाशी को प्रयोग करते समय अकेले नहीं होना चाहिए। एक या दो व्यक्तियों को खेत के बाहर होना चाहिए, जिससे आपातकाल में उनसे मदद ली जा सके।
- कीटनाशी का घोल बनाते समय किसी बच्चे या अन्य आदमी अथवा जानवर को पास में नहीं रहने देना चाहिए।
- कीटनाशी को मिलाने के लिए लकड़ी का डण्डा प्रयोग करना चाहिए तथा घोल को ढककर रखना चाहिए ताकि कोई पशु उसे धोखे से पी न ले।
- दवा के साथ मिली हुई प्रयोग पुस्तिका को दुबारा पढ़ कर उसके अनुदेशों का पालन करना चाहिए।
- कीटनाशक छिड़कने वाले यंत्र की जाँच कर लेनी चाहिए। यदि यंत्र खराब है, तो पहले उसकी मरम्मत कर लेनी चाहिए। तथा नोज़ल कभी भी मुँह से खोलने का प्रयास नहीं करना चाहिए।
- कीटनाशक का छिड़काव करने के पश्चात त्वचा को अच्छी तरह से साफ कर लेना चाहिए।
- तरल कीटनाशियों को सावधानीपूर्वक मशीन में डालना चाहिए और यह ध्यान रखना चाहिए कि यह किसी भी प्रकार से मुँह, कान, नाक, आँख आदि में न जाने पाए । यदि ऐसा होता है, तो तुरंत साफ पानी से बार-बार प्रभावित अंग को धोना चाहिए ।
- छिड़काव के समय साफ पानी की पर्याप्त मात्रा पास में रखनी चाहिए ।
- कीटनाशी का प्रयोग करते समय किसी को खान-पान या धूम्रपान नहीं करना चाहिए ।
- कीटनाशी मिलाते समय जिधर से हवा आ रही हो उसी तरफ खड़ा होना चाहिये ।
- कीटनाशी का प्रयोग करते समय यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि कीटनाशी की मात्रा पूरी तरह पानी में घुल गयी हो ।
- रसायन का धुँआ सांस के द्वारा शरीर के अंदर नहीं जाने देना चाहिए ।
- हवा के विपरीत दिशा में खड़े होकर छिड़काव या बुरकाव नहीं करना चाहिए ।
- एक बार जितनी आवश्यकता हो उतना ही कीटनाशी ले जाये ।
- छिड़काव के लिए उपयुक्त समय सुबह या सांयकाल होता है तथा यह ध्यान रखना चाहिए कि हवा की गति 7 किमी प्रति घण्टा से कम ही होनी चाहिए तथा तापमान 21 डिग्री सेंटीग्रेड के आस-पास रहना सर्वोत्तम होता है ।
- फूल आने पर फसलों पर कम से कम छिड़काव करना चाहिए और यदि छिड़काव करना ही हो तो हमेशा सांयकाल में ही करना चाहिए, जिससे मधुमक्खियाँ रसायन से प्रभावित न हों ।
- कीटनाशकों का व्यक्ति पर प्रभाव दिखने लगे तो तुरंत डाक्टर के पास ले जाना चाहिए साथ ही कीटनाशी का डिब्बा भी लेकर जाना चाहिए ।

कीटनाशियों के प्रयोग के बाद बरते जाने वाली सावधानियाँ

- बचे हुए कीटनाशक की शेष मात्रा को सुरक्षित स्थान पर भण्डारित कर देना चाहिए ।

- कभी भी कीटनाशी के घोल को पम्प में नहीं छोड़ना चाहिए।

3. पम्प को ठीक तरह से साफ करके ही भण्डार गृह में रखना चाहिए।

- खाली डिब्बे को किसी अन्य काम में न लेकर बल्कि उसे तोड़कर दो फुट गहरे मिट्टी में दबा देना चाहिए।
- कागज़ या प्लास्टिक के डिब्बे को यदि जलाना है तो उसके धुँए के पास खड़ा नहीं होना चाहिए।
- कीटनाशी के छिड़काव के समय प्रयोग में लाये गये कपड़े, बर्तन आदि को अच्छी तरह से धोकर रखना चाहिए।
- कीटनाशी का छिड़काव करने के बाद अच्छी तरह से स्नान करके दूसरे वस्त्र पहन लेने चाहिए।
- जिस भी कीटनाशक का प्रयोग करें उसका सम्पूर्ण विवरण लिखकर रख लेना चाहिए।
- कीटनाशी छिड़काव के बाद छिड़के गये खेत में किसी भी आदमी अथवा जानवर को कुछ देर तक नहीं जाने देना चाहिए।
- कीटनाशी छिड़काव के बाद छः घण्टे तक वर्षा नहीं होनी चाहिए। यदि छः घण्टे के अंदर वर्षा हो जाती है तो पुनः छिड़काव करना चाहिए।
- अंतिम छिड़काव एवं फसल की कटाई या तुड़ाई के समय दवा में बताये गये अंतराल का अवश्य ध्यान रखना चाहिए।

विष का उपचार

सभी प्रकार की सावधानियाँ रखने के उपरांत भी यदि कोई व्यक्ति इन कीटनाशकों का शिकार हो जाये, तो निम्नलिखित सावधानियाँ अपनानी चाहिए।

- रोगी के शरीर से विष को शीघ्रातिशीघ्र निकालने का प्रयास करना चाहिए ।
- विषमारक दवा का तुरंत प्रयोग करना चाहिए ।
- रोगी को तुरंत पास के किसी अस्पताल या डॉक्टर के पास ले जाना चाहिए ।
- यदि जहर खा लिया है तो एक गिलास गुनगुने पानी में दो चम्मच नमक मिलाकर उल्टी करानी चाहिए अथवा गुनगुने पानी में साबुन घोलकर पिलाना चाहिए अथवा एक चम्मच गुनगुने पानी मे एक ग्राम जिंक सल्फेट मिला कर देना चाहिए।
- यदि व्यक्ति ने विष सूँघ लिया है तो शीघ्र ही खुले स्थान पर ले जाना चाहिए। शरीर के कपड़े ढीलेकर देने चाहिए। यदि दौरे पड़ रहे हैं तो अँधेरे स्थान पर ले जाना चाहिए। यदि सांस लेने में समस्या हो रही हो तो पेट के सहारे लिटाकर उसकी बाँहों को सामने की ओर फैला लें एवं रोगी की पींठ को हल्के-हल्के सहलाते हुए दबाएँ तथा कृत्रिम स्वाँस का भी प्रबंध करें।

निष्कर्ष

कीटनाशकों के घतक प्रभाव से बचने के लिए आवश्यक है कि उन पर लिखे निदेर्शों का पालन सही प्रकार से किया जाये तथा इसमें किसी भी प्रकार की असावधानी न बरती जायें क्योंकि जरा सी चूक होने पर जान जाने का भी खतरा रहता है। इसलिए कीटनाशकों का सावधानी पूर्वक इस्तेमाल करना जरूरी है।

संदर्भ : डॉ. माथुर और डॉ. उपाध्याय (2020) कृषि कीट विज्ञान, रमा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।

❖❖

ISSN No. 2583-3146

आम के महत्वपूर्ण मूल्यवर्धित उत्पाद

अमित कुमार[1*], प्रशान्त गौतम[2], सतवान सिंह[3], रामदीन कुमार[4] एवं कुलदीप कुमार शुक्ला[5]

[1] एवं [2] फल विज्ञान विभाग

[3]पुष्प विज्ञान एवं भूदृश्य निर्माण विभाग

सरदारवल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ

[4]उद्यान विज्ञान विभाग एवं कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

[5]फल विज्ञान एवं उद्यान प्रौद्योगिकी विभाग, ओडिशा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर

पत्राचारकर्ता : amitworld701@gmail.com

परिचय

हमारे देश में आम उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्र में सफलतापूर्वक व्यावसायिक रूप से उगाया जाने वाला महत्वपूर्ण स्वादिष्ट मीठा फल है। आम का वैज्ञानिक नाम *मैंगीफेरा इंडिका* (Mangifera Indica) तथा यह

एनाकार्डियासि (Anacardiaceae) कुल का पेड़ है। यह एक प्रकार का रसीला फल होता है। आम का नाम सुनते ही मुंह में एक अनूठा रस घुल जाता है। शायद, इसीलिए आम अपने गुणों के कारण फलों का राजा भी कहा जाता है। आम भारत का राष्ट्रीय फल भी है। आम का स्वाद ही नहीं, बल्कि इसका नाम भी बहुत मायने रखता है। यह दुनिया का सबसे शानदार फल है। भारत के उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक और पश्चिम में गुजरात से लेकर पूर्व में आसाम तक सभी जगह आम उगाया जाता है। बाकी सभी फलों में से भारत में आम की महत्व ही कुछ और ही है। पूरे विश्व भर में आम की विभिन्न किस्में पायी जाती है। आम की लगभग 1,600 किस्में भारत में ही मौजूद हैं। अधिकांश भारतीय किस्में स्वादिष्ट, उत्कृष्ट स्वाद और आकर्षक हैं। फिर भी केवल 20-25 किस्में ही व्यावसायिक रूप से उगाई जाती हैं। आम का फल विटामिन ए और कई खनिज पोषक तत्वों का समृद्ध स्रोत होता है। यह भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश और फिलीपींस में राष्ट्रीय फल माना जाता है और बांग्लादेश में इसके पेड़ को राष्ट्रीय पेड़ का दर्जा प्राप्त है। आम उत्पादन में भारत का पहला स्थान है तथा कुल फल उत्पादन का दूसरा स्थान है। भारत में आम की खेती का कुल क्षेत्रफल 229 मिलियन हैक्टयर तथा उत्पादन 2044 मिलियन टन होता है । भारत में इसकी खेती करने वाले प्रमुख राज्य में, आंध्र प्रदेश और उत्तर प्रदेश (लगभग 24 प्रतिशत) जिसके बाद कर्नाटक (10 प्रतिशत) का स्थान तथा बिहार (7 प्रतिशत) का प्रमुख आम उत्पादक हैं। आम स्वादिष्ट होने के साथ-साथ पौष्टिकता से भरपूर होता है। इसमें एंटीऑक्सीडेंट गुण होते हैं। ये इम्युनिटी को मजबूत करता है। आम को कच्चा या पका दोनों तरह से उपयोग करते हैं। जहाँ कच्चे आम में विटामिन 'सी' प्रचुर मात्रा में होता है वहीं पके आम (कैरोटिनॉइड) का बहुत अच्छा स्रोत है। आम कैल्शियम, फॉस्फोरस, लोहा आदि खनिज लवणों का अच्छा स्रोत है। आम के फल अपनी वृध्दि एवं विकास की हर अवस्था में उपयोगी है। कच्चे और पके आम में प्रोटीन, वसा, काबोहाइड्रेट, नमी, खनिज लवण, कैल्शियम, लोहा, कैरोटीन, एस्कार्बिक एसिड, राइबोफ्लेविन आदि तत्व पाए जाते हैं। पके आम का स्क्वैश, आरटीएस बनाकर और कच्चे आम की चटनी, आमचूर, पन्ना, खटाई आदि उत्पाद बनाकर उपयोग कर सकते हैं।

आम के फल के उपयोग

आम के फलों का उपयोग विभिन्न रूप में किया जाता है। सामान्य तौर पर, कच्चे फलों का उपयोग अचार, चटनी, पाउडर और पेय बनाने के लिए किया जाता है और पके फलों को सेवन करने के अलावा, प्रसंस्करण कर विभिन्न प्रकार से संसाधित भी किया जाता है मूल्य वर्धित उत्पाद जैसे रस, अमृत, स्क्वैश, जैम आदि। हालांकि कई किस्में भारत में उगाई जाती हैं, लेकिन उनमें से अधिकांश का उपयोग टेबल के

प्रयोजनों (ताजा खाने) के लिए किया जाता है और केवल कुछ में प्रसंस्करण विशेषताएँ होती हैं, जिनका उपयोग ऐसे उद्देश्यों के लिए किया जाता है। फलों को नमकीन सिरप में या निर्जलीकरण द्वारा स्लाइस के रूप में भी संरक्षित किया जाता है। सीआईएसएच, लखनऊ में आम की चुनिंदा किस्मों से वाइन तैयार करने के लिए भी बनाया गया है, जिसका व्यावसायिक दोहन के लिए बहुत अच्छा भविष्य है। आम का बीज, अक्सर कर्नेल के रूप में जाना जाता है, इसमें 8-12 प्रतिशत वसा, 6.1-9.5 प्रतिशत प्रोटीन होता है, जिसका उपयोग साबुन बनाने में किया जा सकता है और कन्फेक्शनरी में कोको के लिए एक अच्छा विकल्प भी प्रदान करता है। भुना हुआ आम कर्नेल भी कई लोगों द्वारा पसंद किया जाता है।

आम का प्रसंस्करण

आम के फलों का उपयोग कई मूल्य वर्धित उत्पाद जैसे चटनी, आम पाउडर (आमचूर) और चमड़ा विकास के लिए किया जाता है, आमतौर पर भारत में इसे 'आम पापड़' व 'अमावट' कहा जाता है। हालांकि, आम के विभिन्न मूल्यवर्धित उत्पादों की तैयारी के लिए तकनीकों का सुधार और मानकीकरण लगातार हो रहा है। आम के कुछ लोकप्रिय उत्पाद और उनके पद्धतियों का संक्षेप में यहां वर्णन किया गया है।

क. कच्चे आम के उत्पाद

कच्चे आम के फलों का इस्तेमाल कई तरह से किया जा सकता है। शुरुआत में, आम आमतौर पर मीठी या खट्टी चटनी के लिए इस्तेमाल किया जाता है। जैसे-जैसे फल की वृद्धि स्टोनहार्डिंग की ओर बढ़ती है, यह कई उपयोगी उत्पाद बनाने के लिए उपयुक्त हो जाता है, जैसा कि यहाँ वर्णित है

(अ) हरे आम का पेय

आवश्यक सामग्री : हरे आम का पेय सांद्रण के साथ तैयार किया जा सकता है। इस रेसिपी में 25 प्रतिशत आम का गूदा, 40-45 प्रतिशत टीएसएस, 2 प्रतिशत सामान्य नमक और अम्लता लगभग 1.5 प्रतिशत समायोजित की जाती है। इसके अलावा, पेय में काली मिर्च, पुदीना, अदरक, जीरा आदि मिला सकते हैं।

विधि : हरे आम का पेय बनाने के लिए सर्वप्रथम कच्चे आमों को अच्छी तरह से छील कर और घुल लें और स्लाइस में काट लें। अब कटे हुए आमों में पानी की दुगुनी मात्रा डालकर उबाल लें। अर्क आने पर चीनी की दी हुई मात्रा डाले और इसे फिर से गर्म करें। साथ ही इसे लगभग 50 डिग्री सेल्सियस तक ठंडा करें। फिर पुदीना और अन्य मसालों का अर्क डालें। अच्छी तरह से सामग्री मिलाएं और 0.7 ग्राम पोटैशियम मेटाबाइसल्फाइट (केएमएस) प्रति किलोग्राम अंतिम उत्पाद में जोड़ें । मिश्रण को पूर्व-निष्फल बोतलों में डालें, उन्हें क्राउन-कॉर्क करें और पिघला हुआ मोम के साथ सील करें। मलमल के कपड़े से छानने के बाद हरे आम का पेय 'पन्ना' का संशोधित रूप है, क्योंकि 'पन्ना' में चीनी नहीं डाली जाती है और पूरे उबले/भुने आम का इस्तेमाल किया जाता है।

(ब) आमचूर (आम पाउडर)

आवश्यक सामग्री : कच्चा आम, 0.2% पोटैशियम मेटाबाइसल्फाइट

कार्य प्रणाली : कच्चे आम धोए जाते हैं, अधिमानतः अंकुर के पेड़ से काटे जाते हैं,छीलकर 4-5 मिमी मोटे और 30-40 मिमी लंबे स्लाइस में काट लें। ये स्लाइस 0.2 प्रतिशत पोटैशियम मेटाबाइसल्फाइट (केएमएस) घोल में 10 मिनट के लिए डुबोकर रखें। फिर स्लाइसों को खुली हवा में या सौर/विद्युत ड्रायर में सुखाया जाता है। निर्जलीकरण के बाद, स्लाइस पीसकर पाउडर में परिवर्तित हो जाते हैं। पॉलीथीन पाउच या एयरटाइट कंटेनर में पैक की जाती है और उपयोग करने तक सूखी ठंडी जगह पर रख दें।

(स) अचार

कच्चे आम से विभिन्न प्रकार के अचार जैसे मीठा, खट्टा, गर्म और अचार का तेल आमतौर पर बनाया जाता है। हालांकि,

ISSN No. 2583-3146

अचार में तेल आमतौर पर विपणन किया जाता है। तेल का अचार बनाना इस प्रकार है:

आवश्यक सामग्री : आम के टुकड़े 1 किलो; नमक 40 ग्राम; मेंथी बीज 50 ग्राम; अदरक 50 ग्राम; हल्दी 20 ग्राम; लाल मिर्च 25 ग्राम; काली मिर्च 30 ग्राम; सौंफ़ 30 ग्राम; और खाना पकाने का तेल 300 ग्राम, आम का अचार।

विधि : पूरी तरह से परिपक्व, कच्चे आम के फलों को धो लें और स्लाइस में काट लें। उन्हें पर्याप्त मात्रा में नमक पाउडर मिला लें। सामग्री को कांच के जार में भरें या पॉलीथीन बैग में और जब तक हरा रंग गायब न हो जाए धूप में रखें। अदरक के टुकड़ों को पाउडर मसाले के साथ मिलाएं। तेल को स्मोकिंग पॉइंट पर उबालें और फिर इसे ठंडा कर लें। तेल में मसाले का पाउडर डालिये और लगातार चलाते हुये उबालिये। इसमें नमक, धुले आम के टुकड़े डालिये और सामग्री को फिर से तब तक उबालिये जब तक पूरा द्रव्यमान अच्छी तरह मिश्रित न हो जाए। गर्म करना बंद करें और लगभग 10 मिली ग्लेशियल एसिटिक एसिड डालें यदि आवश्यक हो तो अम्ल और थोड़ी मात्रा में लौंग और इलायची और उपयुक्त कंटेनर में पैक करें।

(घ) आम-नींबू का अचार

आवश्यक सामग्री : आम- 1 किग्रा, नींबू- 500 ग्राम, नमक- 200 ग्राम, मेथी- 50 ग्राम, कलौंजी- 20 ग्राम, हल्दी- 20 ग्राम, लाल मिर्च- 20 ग्राम,सरसों का तेल आवश्यकतानुसार।

आम-नींबू का अचारबनाने की विधि

आम को अच्छी तरह धुलकर काट लें एवं नींबू को भी दो या चार भाग में काट लें। नींबू में नमक मिलाकर धूप में रख

दें ताकि उसका पानी निकल जाए, जब पानी रिसना बन्द हो जाए तो आम के अचार में डाल दें, फिर उसमें मेथी, कलौंजी, हल्दी, लाल मिर्च पाउडर, काली मिर्च, नमक एवं सरसों का तेल मिलाकर एक सप्ताह तक धूप में रखें। एक सप्ताह बाद अचार खाने योग्य तैयार हो जाएगा।

(ख) पके आम के उत्पाद

पके आमों का उपयोग विभिन्न मूल्य वर्धित उत्पादों की तैयारी के लिए किया जाता है जैसे लुगदी, अमृत, रस, स्क्वैश, स्लाइस, चमड़ा, पाउडर आदि। हालांकि, कुछ व्यावसायिक रूप से व्यवहार्य उत्पादों की तैयारी यहाँ का वर्णन किया गया है।

(अ) पल्प : गूदा निकालने के लिए, पूरी तरह से पके आम चुनें और उन्हें साफ पानी में धो लें । छिलका हटा दें, स्लाइस काट लें और लुगदी में समरूप बनाना। पल्प को छलनी से छान लें तंतुओं को हटा दें। मीठी किस्मों में, 3 ग्राम

ISSN No. 2583-3146

तक साइट्रिक एसिड प्रति किलो गूदा डालना चाहिए। पल्प (गूदा) को 76-78° सेल्सियस तक गर्म करें लगातार चलाते हुए 40°C तक ठंडा करें। 1-2 ग्राम पोटैशियम मेटाबाइसल्फाइट प्रति किलो लुगदी में जोड़ें । फिर, तुरंत इसे साफ और निष्फल गिलासया खाद्य ग्रेड प्लास्टिक के कंटेनर में भर दिया जाता है और पिघला हुआ मोम के साथ सील करें; और उपयोग होने तक साफ, सूखी और ठंडी जगह पर स्टोर करें।

(ब) रस : आम का जूस सभी प्रकार के टेबल वेरायटी से बनाया जा सकता है। आम रस बनाने के लिए, पहले गूदे को वर्णित के रूप में निकाला जाता है। फिर 70 प्रतिशत और पानी को मिलाकर रस तैयार किया जाता है 30 प्रतिशत गूदा, चीनी और साइट्रिक एसिड मिलाने के लिए TSS (कुल घुलनशील ठोस) 20 प्रतिशत और अम्लता 0.3 प्रतिशत हो, एक किलो गूदे के लिए 1.85 किलो पानी, 450 ग्राम चीनी और 8 ग्राम साइट्रिक एसिड। सामग्री को 95 डिग्री सेल्सियस तक गर्म करें और इसे प्रीस्टरलाइज़्ड बोतलों में गर्म करें और क्राउन कॉर्क को ठीक करें। रस से भरी बोतलें 20-25 मिनट के लिए उबलते पानी में पाश्चुरीकृत किया जाना चाहिए। फिर बोतलों को बाहर निकालें और उन्हें कमरे के तापमान पर ठंडा करें और भविष्य में उपयोग के लिए उन्हें ठंडी और सूखी जगह पर स्टोर करें।

(स) अमृत : अमृत तैयार करने की प्रक्रिया आम के रस की तैयारी के समान है सिवाय इसके कि अमृत में लुगदी की मात्रा 30 प्रतिशत के बजाय 20 प्रतिशत है। यह आम के रस का एक उत्कृष्ट विकल्प हो सकता है।

(य) स्क्वैश : मैंगो स्क्वैश बनाने के लिए, ऊपर बताए गए तरीके से गूदा तैयार कर लीजिए फिर 1.75 किलो चीनी को 1.25 लीटर पानी में घोलें और उबाल लें। फल की मिठास के आधार पर 25-35 ग्राम साइट्रिक एसिड मिलायें। चाशनी को 1 किलो गूदे में छान लीजिये और अच्छी तरह मिला लें। यदि ताजा गूदा निकाला जाता है, तो स्क्वैश में 2.8 ग्राम पोटैशियम मेटाबाइसल्फाइट (केएमएस) तुरंत मिलाया जा सकता है, जो अक्सर कम मात्रा में पानी में घुल जाता है। स्वच्छ निष्फल बोतलें वायुरोधी क्राउन कॉर्क के साथ उपयोग करने तक की जगह में भरें या पिघला हुआ पैराफिन मोम के साथ कॉर्क करेंऔर ठंडा होने पर स्टोर करें।

(र) चमड़ा (आम पापड़) : आम का चमड़ा, आम का एक महत्वपूर्ण उत्पाद है, जो भारत में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है साथ ही ये खाने में काफी स्वादिष्ट होता है और आमतौर पर इसे 'आमपापड़' कहा जाता है आम का चमड़ा बनाने के लिए एल्यूमीनियम पन्नी पर या ट्रे पर पका हुआ आम के गूदे में 2 ग्राम पोटैशियम मेटाबाइसल्फाइट (केएमएस) प्रति किलो गूदा में फैलाना चाहिए और सौर ड्रायर या ओवन में रखा जाना चाहिए। लुगदी की बाद की परतें हो सकती हैं मोटा चमड़ा प्राप्त करने के लिए प्रारंभिक सुखाने के बाद जोड़ा जाना चाहिए। सूखे उत्पाद को टुकड़ों में काट लें और इसे बटर पेपर में लपेट दें। उत्पाद को साफ, सूखे और ठंडे जगह में संग्रहित किया जाना चाहिए।

ISSN No. 2583-3146

(ल) प्यूरी : आम को प्यूरी के रूप में प्रसंस्करण कर संसाधित किया जाता है, जिसका उपयोग अमृत, रस, स्क्वैश, जैम, जेली और निर्जलित उत्पाद बनाने के लिए किया जा सकता है। जमे हुए या डिब्बा बंद प्यूरी को रसायन द्वारा बैरल में संरक्षित या संग्रहीत किया जा सकता है। वर्ष के शेष भाग के दौरान जब ताजे आम उपलब्ध नहीं होते हैं यह सामग्री कच्चे माल की आपूर्ति की अनुमति देता है।

ग. उप-उत्पादों का उपयोग

आम प्रसंस्करण इकाइयों द्वारा कई उप-उत्पादों का उत्पादन किया जाता है। उदाहरण के लिए, कैनरीज़ कुल प्रसंस्कृत आमों का लगभग 40-60 प्रतिशत अपशिष्ट उत्पन्न करता है। इस कचरे का 15 प्रतिशत अपशिष्ट छिलका, कर्नेल 18प्रतिशत और अपशिष्ट लुगदी 8 से 10 प्रतिशत के लिए जिम्मेदार है। इन उपोत्पादों का उपयोग स्टार्च और पेक्टिन को खिलाने और निकालने के लिए किया जा सकता है। इसके अलावा स्टीयरिक और ओलिक अम्ल से भरपूर आम की गिरी में 7-12 प्रतिशत तेल होता है।इस तेल को अम्ल कम करने वाला उत्कृष्ट गुणों के साथ एक ओलीन देने के लिए अंशांकित किया जा सकता है और एक स्टीयरिन जो कुछ वसा में से एक है जिसका उपयोग कोकोआ मक्खन को बदलने के लिए किया जा सकता है व कुछ देशों में चॉकलेट में इस्तेमाल किया जाता है।

(अ) आम का तेल : आम की गुठली के टुकड़े की गोली बनाने के लिए एक मशीन और छर्रों को अवगत कराया जाता है। छर्रों को कमरे के तापमान पर कूलर में ठंडा किया जाता है और विलायक निष्कर्षण संयंत्र को अवगत कराया जाता है। इसका उपयोग चॉकलेट निर्माण में कोकोआ मक्खन के विकल्प के रूप में किया जा सकता है। इसका उपयोग यूनानी और आयुर्वेदिक दवाओं में भी किया जाता है और यह इस तेल का औषधीय महत्व है। फैट एक खाद्य तेल उद्देश्य के रूप में थोड़ा संशोधित किया जा सकता है और साबुन उद्योग में भी इस्तेमाल किया जा सकता है ।

(ब) गिरी का आटा : विभिन्न प्रसंस्करण चरणों के माध्यम से पके आम के फलों की गुठली को आटे में संसाधित किया जा सकता है। इसका आटा प्रोटीन और वसा का अच्छा स्रोत है। इसमें कैल्शियम, मैग्नीशियम और पोटैशियम के प्रशंसनीय स्तर भी शामिल है। इस आटे का उपयोग स्टार्च और प्रोटीन का निष्कर्षण के लिए किया जा सकता है। गिरी का आटा इस्तेमाल कर सकते हैं इसमें गेहूं के आटे को लगभग 5-10 प्रतिशत की सीमा तक बदलें। विभिन्न खाद्य उत्पादों जैसे चपाती की तैयारी। यह फ़ीड और खाद के रूप में, कपड़ा और वस्त्र उद्योग संचालन में, कपड़े धोने के लिए, कागज चिपकने में और किण्वनमें इस्तेमाल किया जा सकता है।

निष्कर्ष

आम एक व्यावसायिक रूप से महत्वपूर्ण फल है, जिसके द्वारा विभिन्न प्रकार के महत्वपूर्ण मूल्यवर्धित उत्पाद बनाये जाते है। जिसका उपयोग दोनों कच्चे एवं पके अवस्था में मूल्य वर्धित उत्पाद बनाने के लिए किया जाता है। सामान्य तौर पर, कच्चे फलों का उपयोग अचार, चटनी, पाउडर और पेय बनाने के लिए किया जाता है और पके फलों को सेवन करने के अलावा, प्रसंस्करण कर विभिन्न प्रकार से संसाधित भी किया जाता है। मूल्य वर्धित उत्पाद जैसे पल्प, रस, अमृत, स्क्वैश, जैम, चमड़ा (आम पापड़), प्यूरी आदि। इसके अलावा आम का उपयोग प्रसंस्करण इकाइयों द्वारा कई उप-उत्पादों का उत्पादन किया जाता है। इसीलिए आम मूल्य वर्धित उत्पादके लिए एक महत्वपूर्ण फल है।

❖❖

ISSN No. 2583-3146

सूरजमुखी की खेती

संयम त्रिपाठी [1]*, सोबिता साइमन[2] एवं अभिलाषा ए. लाल[3]

पादप रोग विज्ञान विभाग, शुआट्स, प्रयागराज

पत्राचारकर्ता : ndsanyam@gmail.com

परिचय

सूरजमुखी एक महत्वपूर्ण तिलहनी फसल है, बेहतर मुनाफा देने वाली यह फसल नकदी फसल के अन्तर्गत आती है। सूर्य की ओर झुका रहने के कारण इस फूल का नाम सूरजमुखी पड़ा। यह एक ऐसी फसल है जिस पर प्रकाश का कोई असर नहीं पड़ता। सूरजमुखी का वानस्पतिक नाम *हेलियन्थस (Helianthans)* है तथा यह ऐस्टरेसिए (Asteraceae) कुल का पौधा है। यह अमरीका का देशज है परन्तु वर्तमान समय में इसे विश्व के विभिन्न देशों जैसे रूस, अमेरिका, ब्रिटेन, मिस्र, डेनमार्क, स्वीडन और भारत आदि अनेक देशों में उगाया जा रहा है। विश्व में इसका कुल 27 मिलियन टन उत्पादन होता है।

सूरजमुखी की खेती खरीफ, रबी और जायद तीनों सीजनों में की जा सकती है। सूरजमुखी की खेती देश में पहली बार 1969 में उत्तराखण्ड राज्य के पंतनगर में की गयी थी। वर्तमान समय में भारत में 15 लाख हेक्टेयर भूमि में सूरजमुखी की खेती की जाती है और करीब 90 लाख टन उत्पादन होता है। भारत में सुरजमुखी की औसत उत्पादकता, क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। सूरजमुखी के प्रमुख उत्पादक 7 राज्य महाराष्ट्र, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु, हरियाणा और पंजाब है।

बागों में उगाये जाने वाले सूरजमुखी की उपर्युक्त प्रथम दो प्रजातियाँ जो की सामान्य या संकुल प्रजातियाँ होती है। इसमें मार्डन और सूर्य शामिल है एवं द्वितीय संकर प्राजातियाँ इसमें के.वी.एस एच-1, एस एच 3322 एवं एफ एस एच 17 पाई जाती हैं।

सूरजमुखी का पेड़ 8 फुट तक ऊँचे होते हैं तथा इसका फूल 7 सेमी से 15 सेमी चौड़े और कर्षण से उगाने पर 30 सेमी. या इससे अधिक चौड़े हो सकते हैं। इनके डंठल बहुत नाजुक होते हैं जो हवा के झोंके से टूट जाते हैं। अतः इनके पेड़ को एक छड़ी के साथ बाँधा जाता है। इसकी पत्तियाँ 7 सेमी से 30 सेमी लम्बी होती हैं। इनके पेड़ एक वर्षीय व बहुवर्षीय होते हैं। इसे सभी प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता हैं। इस फसल को नकदी फसल के नाम से जान जाता है।

पिछले कुछ वर्षों में अपनी उत्पादन क्षमता और अधिक मूल्य के कारण सूरजमुखी की खेती किसानों के बीच लोकप्रिय हो रही है। सूरजमुखी की फसल हर प्रकार की मिट्टी में उगाईजा सकती है। जहां पर पानी निकास का अच्छा प्रबंध हो। अम्लीय और क्षारीय जमीनों में इसकी खेती करने से बचना चाहिए।ज्यादा पानी सोखने वाली भारी जमीन इस के लिए ज्यादा अच्छी होती है।

तेल व बीजों के फायदे

सूरजमुखी के फूलों व बीजों में कई औषधीय गुण छिपे होते हैं। इसके बीज दिल को स्वस्थ रखने से लेकर यह कैंसर जैसी जानलेवा बीमारी से बचाव करता है। इसके अलावा सूरजमुखी के तेल का सेवन करने से लीवर सही तरीके से काम करता है और ऑस्टियोपरोसिस जैसी हड्डियों की बीमारी भी नहीं होती है, यह त्वचा को निखारने के साथ बालों को भी मजबूत बनाता है। इसके बीज न केवल स्वादिष्ट होते हैं, बल्कि इन्हें खाने से पोषण भी मिलता है और यह पेट भी भरता हैं। सूरजमुखी के बीज सभी फूड स्टोर्स में आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। सूरजमुखी के बीजों को खाने से हार्टअटैक का खतरा कम होता है, कोलेस्ट्रॉल घटता है।

तेल व बीजों के नुकसान

यद्यपि सूरजमुखी एक अत्यंत उपयोगी बीज है व इसके तेल के भी अपने कई गुण होते हैं परन्तु कुछ फायदे होने के

ISSN No. 2583-3146

बावजूद इसका अत्यधिक सेवन शरीर को नुकसान पहुँचा सकता है। सूरजमुखी के बीजों में फॉस्फोरस की मात्रा अधिक होती है। जिसके अत्यधिक सेवन से किडनी की समस्या उत्पन्न हो सकती है। इसकेा बीजों में सेलोनियम की मात्रा अधिक होती है। यदि शरीर में इसकी मात्रा बढ़ जाये तो सूजन, थकान व मूड स्विंग की समस्या उत्पन्न हो सकती है। सूरजमुखी के बीज शरीर में सोडियम का स्तर बढ़ा सकते हैं जो उच्च रक्तचाप और हृदय स्वास्थ्य के लिए समस्या उत्पन्न कर सकते है। सूरजमुखी के तेल में ओमेगा 6 फैटी एसिड, अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है। जो शरीर के मोटापा व कोलेस्ट्राल के स्तर को बढ़ाता है। गर्भवती स्त्रियों को सूरजमुखी के तेल का सेवन नहीं करना चाहिए।

प्रमुख उन्नत किस्में

सूरजमुखी की एकमात्र किस्म मार्डन बहुत लोकप्रिय है। परंतु अब कई संकर किस्में भी उपलब्ध हैं जैसे बीएसएस-1, केबीएसएस-1, ज्वालामुखी, एमएसएफएच-19, सूर्या आदि।

भूमि का चुनाव एवं खेत की तैयारी

सूरजमुखी की उपज खरीफ, रबी और जायद तीनों सीजनों में की जाती है। सूरजमुखी की फसल हर प्रकार की मिट्टी में उगाई जा सकती है। परन्तु इसके खेती के लिये पानी निकास का अच्छा प्रबंध होना चाहिए। अम्लीय और क्षारीय जमीनों में इसकी खेती करने से बचना चाहिए। ज्यादा पानी सोखने वाली भारी जमीन इस के लिए ज्यादा अच्छी होती है। खेत में भरपूर नमी न होने पर पलेवा लगाकर जुताई करनी चाहिए। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करने के बाद साधारण हल से 2-3 बार जुताई कर के खेत को भुरभुरा बना लेना चाहिए या रोटावेटर का इस्तेमाल करना चाहिए।

बुवाई का समय एवं विधि

सूरजमुखी की फसल प्रकाश संवेदी है। अतः इसे वर्ष में तीन बार रबी, खरीफ एवं जायद सीजन में बोया जा सकता है। जायद मौसम में सूरजमुखी को फरवरी के प्रथम सप्ताह से फरवरी के मध्य तक बोना सबसे उपयुक्त होता है। जायद मौसम में कतार से कतार की दूरी 4-5 सेमी व पौध से पौध की दूरी 25-30 सेमी की दूरी पर बुवाई करें।

खाद एव उर्वरक

बुवाई से पूर्व 7-8 टन प्रति हैक्टेयर की दर से सड़ी हुई गोबर खाद भूमि में खेत की तैयारी के समय खेत में मिलाएं व अच्छी उपज के लिए सिंचित अवस्था में यूरिया 130 से 160 किग्रा, एसएसपी 375 किग्रा पोटाश 45 किग्रा एवं नाइट्रोजन 60 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें। नाइट्रोजन 40 किग्रा व पोटाश की समस्त मात्रा बुवाई के समय प्रयोग करें। बुवाई के 30-45 दिनों के बाद पहली सिंचाई के समय नाइट्रोजन की। शेष 20 किग्रा मात्रा को खड़ी फसल में देन लाभ पाया गया है।

सिंचाई

जायद (फरवरी माह में) में बोयी गई सूरजमुखी की फसल में 3 सिंचाई की आवश्यकता होती है। पहली सिंचाई बुवाई के 30-35 दिन बाद करें व इसी अवस्था में नाइट्रोजन

की 1/3 मात्रा का उपयोग करें। द्वितीय सिंचाई 20-25 दिन बाद फूल आने की अवस्था में करें एवं अंतिम सिंचाई बीज बनने की अवस्था में करें।

प्रमुख कीट व रोकथाम

(क) प्रायः सूरजमुखी की फसल में कटुवा सूड़ी, बालों वाली सूड़ी आदि शामिल हैं। कटुवा सूड़ी रात्रि को नुकसान पहुंचाते हैं। इसलिए कटुवा सूड़ी को चोरी सूड़ी भी कहते हैं। दिन के समय यह मिट्टी में छिप जाते हैं। सूरजमुखी के पौधे को मारने में इस कीड़े का अहम योगदान होता है।

रोकथाम

कटुवा सूड़ी खत्म करने के लिए खेत की सिंचाई करनी चाहिए ताकि कीड़े पानी में डूबकर मर जाये। इसके अलावा 10 किग्रा. फैनवालरेट 0.4 प्रतिशत प्रति एकड़ धूड़ा करें या 80 मिली. फैनवालरेट 20 ई.सी. या 50 मिली. साइपरमैथिलीन 50 ई.सी. 150 ली. पानी में मिलाकर प्रति एकड़ में छिड़काव करें।

(ख) बालों वाली सूड़ी छोटे-छोटे झुण्ड बनाकर 5-6

दिन में पत्तों को खा जाते हैं। धीरे-धीरे यह कीट पूरे खेत में फैलकर तने को भी हजम कर जाते हैं।

रोकथाम

बालों वाली सूड़ी को समाप्त करने के लिए खेत के चारों तरफ मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत धूड़े की 15 सेमी0 चौड़ी पट्टी बना दें ताकि दूसरे खेत में फैल न सके। डाईक्लोरवास 76 ई0सी0 को 200 ली0 पानी में मिलाकर प्रति एकड़ में छिड़काव करें।

प्रमुख रोग व रोकथाम

(क) सूरजमुखी की फसल में मुख्यतः रतुआ, डाउनी मिल्ड्यू, पत्ती झुलसा जैसी रोग आती हैं। रतुवा रोग में पत्तियों छोटे लाल- भूरे धब्बे बनते हैं। जो जंग के रंग जैसे प्रतीत होते है। बाद में यह रोग पत्तियों तक फैल जाता है। जिससे पत्तियां पीली होकर गिरने लगती हैं।

रोकथाम : रतुवा रोग के बचाव के लिए सहनशील और प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग करना चाहिए, साथ ही साथ मैंन्कोजेब 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।

(ख) डाउनी मिल्ड्यू से रोगग्रस्त होने पर पौधा छोटा रह जाता है जिसमें पत्तियाँ मोटी एवं पत्तियों की नशें सफेद पीली हो जाती हैं, पत्तियों की निचली सतह पर फफूँद दिखता है।

इसके बचाव के लिए रोग प्रतिरोधी संकरों को लगाना महत्वपूर्ण है। फसल चक्र अपनाना चाहिए। फफूंदनाशक बीज उपचार करना चाहिए। पत्ती झुलसा रोग के नियंत्रण हेतु मेन्कोजेब 3 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिडकाव करें।

फसल की सुरक्षा

सूरजमुखी में तोते सर्वाधिक नुकसान पहुंचाते हैं। तोते प्रायः दाने पड़ने की अवस्था से लेकर दाने पकने की अवस्था तक (एक माह) अधिक नुकसान पहुंचाते हैं। इसलिए सूरजमुखी के फूलो को कागज के लिफाफो से ढक दिया जाता है।

कटाई

फसल की कटाई उस समय करें जब कि फूल का पिछला हिस्सा नींबू जैसा पीला रंग का हो जाए और फूल झड़ जाए तो फसल तैयार समझना चाहिए। इस स्थिति में फूल को काटकर खलिहान में लायें व 3-4 दिन खलिहान में सूखने के बाद डंडों से पीटकर बीज निकालें।

सूजरमुखी की एक हेक्टेयर जमीन में उपज

सूरजमुखी की फसल 90-105 दिन में पककर तैयार हो जाती है व उन्नत विधि से उत्पादन करने पर 18-20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक उपज प्राप्त की जा सकती है।

निष्कर्ष

सूरजमुखी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तिलहनी फसल है इसके बीज व तेल के स्वास्थ्य लाभ को देखते हुये बाजार में इसकी व्यावसायिक माँग तीव्र गति से बढ़ रही है। सूरजमुखी को कभी भी लगाया जा सकता है व इसके रख-रखाव की लागत भी कम आती है। यदि किसान इसकी खेती करते हैं तो अच्छी उपज प्राप्त करके अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं।

❖❖

ISSN No. 2583-3146

सब्जी फसलों में खड़ी खेती

रेहान[1]*, अखिलेश तिवारी[2], रीना नायर[3] एवं अंकिता शर्मा[4]

[1,4,3 एवं] [4]बागवानी विभाग, कृषि महाविद्यालय, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्व विद्यालय, जबलपुर

पत्राचारकर्ता : **rehanazmi477@gmail.com**

परिचय

जैसे-जैसे शहरी आबादी बढ़ती जा रही है वैसे-वैसे खाद्यान्न की समस्या बढ़ती जा रही है। तेजी से बढ़ते वैश्विक शहरीकरण, प्राकृतिक आपदाएं, वैश्विक तापमान, साथ ही रसायनों और कीटनाशकों के अनियंत्रित उपयोग ने मिट्टी की उर्वरता को प्रभावित किया है। इसके अतिरिक्त, मिट्टी की उत्पादकता में काफी कमी आई है, मिट्टी की उत्पादकता,

उर्वरता एवं प्रति व्यक्ति की उपलब्ध भूमि में काफी आ गयी है। (लाल; *et al*.,2015)। पारंपरिक मिट्टी आधारित कृषि उत्पादन प्रणालियों को इन चुनौतियों से गंभीर खतरों का सामना करना पड़ता है, जिससे आज खाद्य उत्पादन एक वास्तविक चुनौती बन गया है। मृदा आधारित कृषि पद्धतियों को आधुनिक खेती के अनुरूप कुशलपूर्ण और पर्यावरण के अनुकूल रूपों द्वारा पूरक बनाने की आवश्यकता है। कृषि के इन नए तरीकों को लागू करते समय मिट्टी की उत्पादकता में कमी, मिट्टी के पोषक तत्वों के भंडार में कमी, सिंचाई के लिए पानी की सीमित उपलब्धता और जलवायु परिवर्तन आदि सभी कारकों पर विचार किया जा सकता है। मृदा मुक्त खेती प्रणाली इन आधुनिक चुनौतियों का समाधान करने का एक तरीका हो सकता है। मृदा-आधारित कृषि प्रणालियों के विकल्प के रूप में, ऊर्ध्वाधर कृषि तकनीक एक उपजाऊ कृषि योग्य भूमि और पानी की वर्तमान कमी को कम करने में मदद करने के लिए एक पूरक प्रणाली के रूप में काम कर सकती है।

लंबवत् खेती वह समाधान है, जिसे दुनिया भर में लागू किया गया है। वर्टिकल फार्मिंग द्वारा, शहरी क्षेत्रों में जगह बचाने और सिंचाई के लिए कम से कम ऊर्जा और पानी का उपयोग करने के लिए खड़ी-खड़ी परतों में रोपण करके खाद्य फसलों की खेती आसानी से की जा सकती है। (सोनी एंड आनंद; *et at.*, 2022)

लंबवत् खेती

ऊर्ध्वाधर खेती में जमीन के बजाय पूरे ढांचे (जैसे गगनचुंबी इमारत या पुराने गोदाम) में फसल उगायी जाती है, जो पानी बचाता है और मिट्टी की आवश्यकता को समाप्त करता है। इस प्रकार की खेती में किसी मौसम अथवा अन्य प्राकृतिक कारक का प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। प्रकाश, आर्द्रता और तापमान जैसे पर्यावरणीय कारकों की निरंतर निगरानी और हेरफेर के साथ नियंत्रित वातावरण में उगाए जाने पर पौधों की प्रजातियों की एक विस्तृत विविधता साल भर इष्टतम विकास दर प्राप्त कर सकती है। ऊर्ध्वाधर कृषि रणनीति का उद्देश्य कुशल दर को बढ़ावा देना है। इनडोर भोजन और दवा उत्पादन को सक्षम करने के लिए तापमान, प्रकाश, आर्द्रता और गैसों को कृत्रिम रूप से नियंत्रित किया जा सकता है। रसायनों को पर्यावरण से बाहर रखा जाता है क्योंकि क्लोज्ड ग्रोइंग सिस्टम का उपयोग किया जाता है। उन्होंने ऊर्ध्वाधर खेती शब्द गढ़ा और इसके बारे में 1915 में 'वर्टिकल फार्मिंग' नामक एक पुस्तक लिखी, डिक्सन डेस्पोमियर 1999 में ऊर्ध्वाधर खेती के आधुनिक विचार के साथ आए। शब्द

ISSN No. 2583-3146

'ऊर्ध्वाधर खेती का जनक' भी कहा जाता है। इस क्षेत्र में उनके अग्रणी कार्य को दर्शाता है। उनका उद्देश्य शहरी क्षेत्रों में ही कम दूरी का उपयोग करके और ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादित भोजन को शहरों में लाने में समय बचाने के लिए भोजन विकसित करना था। उनका उद्देश्य शहरी वातावरण में भोजन उगाने का था और इस प्रकार ताजा खाद्य पदार्थ तेजी से और कम कीमत पर उपलब्ध थे। इनडोर संरक्षित वातावरण में फसल उगाने से किसान उपज को अधिकतम करने के लिए पानी, तापमान और प्रकाश की स्थिति को नियंत्रित कर सकते हैं। ऊर्ध्वाधर खेती छत पर बागवानी से परे है, वे पौधों और फलों और सब्जियों से भरी एक पूरी इमारत हैं, जो हमारे स्थानीय खाद्य आपूर्ति स्रोत दिन में 24 घंटे और वर्ष के 365 दिन पूरी करती है। इसके बाद में। ग्रीनहाउस में धातु परावर्तक और फ्लोरोसेंट लाइटिंग के उपयोग के लिए लंबवत रूप से बढ़ते भोजन में प्राप्त करने के लिये किया जा सकता है। इस समय किसानों को कई तरह की दिक्कतों का सामना करना पड़ रहा है। (सलीम *et al.*, 2022)

खड़ी खेती की तकनीक

क. हाइड्रोपोनिक्स वर्टिकल फार्मिंग सिस्टम

हाइड्रोपोनिक्स मिट्टी में पौधों को उगाने के बजाय रासायनिक घोल में पौधों को उगाने की एक विधि है। औद्योगीकृत समाज की निरंतर वृद्धि के साथ, जहाँ बड़े खेत काफी कम होते जा रहे हैं, तो वहीं हाइड्रोपोनिकली बढ़ते पौधे तेजी से खेती के सबसे लोकप्रिय तरीकों में से एक बन रहे हैं। टमाटर, सलाद पत्ता, पालक आदि पत्तेदार हरी सब्जियों को हाइड्रोपोनिक में तीव्र गति से उगाया जा रहा हैं।

मिट्टी रहित फसल उत्पादन के लिए पानी का प्रयोग होता है।

लाभ : मिट्टी से संबंधित खेती को कम करता है, यहाँ तक कि समाप्त करता है, उर्वरकों या कीटनाशकों की आवश्यकता को काफी कम कर देता है। हाइड्रोपोनिक तरीके से पौधे उगाते समय उनकी आसानी से निगरानी की जाती है और किसी भी पोषण की कमी को देखा जा सकता है। पौधे 30-50% तेजी से परिपक्व होते हैं और मिट्टी में उगाए गए पौधों की तुलना में 30% अधिक उत्पादन करते हैं। (सोनी एण्ड आनंद *et.al.*, 2022) चूँकि पोषक तत्व प्राप्त करने के लिए बड़ी मेहनत नहीं करनी पड़ती है, इसलिए पौधे गहरी जड़ प्रणाली विकसित करने के बजाय लम्बे बढ़ने पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है।

बढ़ती आबादी और खेती की लिए कम पड़ती ज़मीन को देखते हुए हाइड्रोपोनिक्स तकनीक बहुत ही कारगार है। ऊँची इमारतों की छत पर भी इस विधि से खेती की जा सकती है। शहरवासी खुद अपने लिए सब्जियों का उत्पादन कर सकेंगे।

अभी तक हाइड्रोपोनिक्स तकनीक फ्राँस जैसे यूरोपीय देशों में सबसे अधिक प्रचलित है। भारत में नई दिल्ली, मुंबई, बंगलौर जैसे शहरों में भी इस मॉडल का बहुत तेजी से उपयोग कर रहे हैं। हाइड्रोपोनिक तकनीक से उगाई जाने वाली सब्जियाँ धनिया, टमाटर,पालक, खीरा, करेला, गुलाब, मिर्च इत्यादि।

हाइड्रोपोनिक संरचनायें और उनका संचालन

पोषक समाधान के साथ-साथ सहायक मीडिया का भी पुनर्नवीनीकरण किया जा सकता है और हाइड्रोपोनिक प्रणालियों में जिसके लिए अनुमति दी जाती है अनुकूलन और संशोधन। पुनः इनका उपयोग किया जाता है, विक, ईबब-फ्लो, ड्रिप, गहरा पानीसंस्कृति, साथ ही पोषक तत्व फिल्म तकनीक अक्सर उपयोग की जाने वाली प्रणालियाँ हैं।

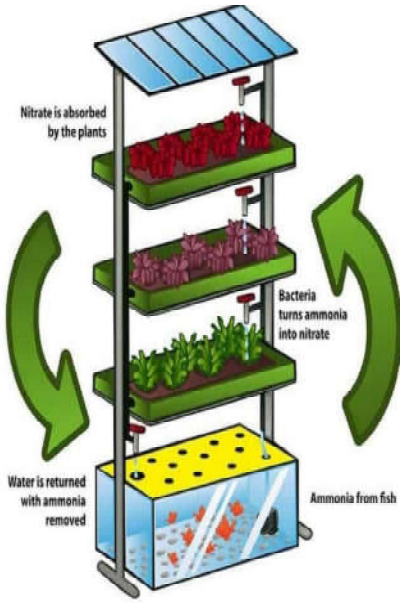

एक्वापोनिक्स वर्टिकल फार्मिंग सिस्टम

एक्वापोनिक्स शब्द 'एक्वाकल्चर' और हाईड्रोपोनिक्स शब्द से मिलकर बना है। जहाँ एक्वाकल्चर शब्द से आशय मछली पालन से है, तो वहीं हाइड्रोपानिक्स शब्द से आशय मिट्टी के बिना पौधों को उगाने की तकनीक से है। इस मछली टैंक से पोषक तत्वों से भरपूर अपशिष्ट के रूप में प्राप्त किया

जाता है जो हाइड्रोपोनिक उत्पादन बेड के लिए 'फर्टिगेट' के रूप में कार्य करता है। बदले में, हाइड्रोपोनिक बेड बायो-फिल्टर के रूप में भी कार्य करते हैं जो पानी से गैसों, एसिड और रसायनों, जैसे अमोनिया, नाइट्रेटस और फॉस्फेट को हटाते हैं।

चूँकि मछली के कचरे में अमोनिया, नाइट्रेट, सूक्ष्म पोषक तत्व आदि मिले हुये होते हैं। अतः इनके जल में घुले हुये अपशिष्ट को अच्छी तरह संसाधित किया जाना चाहिये। ताकि पौधों का विकास अच्छी तरह से हो सके। लेट्यूस, जड़ी-बूटियाँ, और विशेष साग (जैसे पालक, चिव्स, तुलसी और वॉटर क्रेस) को एक्वापोनिक सिस्टम में उगाया जा सकता है (गोताखोर; *et.al.*, 2006)

विशेषता इस प्रणाली में एक्वापोनिक्स और हाइड्रोपोनिक्स संयुक्त प्रयाग होता हैं।

लाभ : हाइड्रोपोनिक्स उत्पादन बेड को 'फर्टिगेट' करने से फिश टैंक का उपयोग करके पौधों और मछलियों के बीच पारस्परिक रूप से लाभकारी संबंध बनाता है, साथ ही एक हाइड्रोपोनिक बेड भी पौधों के लिए सुरक्षित पानी का काम करता है।

ग. एरोपोनिक्स वर्टिकल फार्मिंग सिस्टम

एरोपोनिक्स मिट्टी या समग्र माध्यम के उपयोग के बिना हवा या धुंध के वातावरण में पौधों को उगाने की प्रक्रिया है। शब्द 'एयरोपोनिक' एर ('वायु') और पोनोस ('श्रम') के ग्रीक अर्थों सें लिया गया है। एरोपोनिक कल्चर पारंपरिक हाइड्रोपोनिक्स, एक्वापोनिक्स और इन-विट्रो (प्लांट टिशू कल्चर) दोनों से अलग है। एक तरफ जहाँ हाइड्रोपोनिक्स में बढ़ते माध्यम के रूप में पोषक जल का प्रयोग किया जाता है और पौधों की वृद्धि को बनाये रखने के लिए आवश्यक खनिजों का उपयोग किया जाता है। एक्वापोनिक्स में पानी और मछली द्वारा निकाले गये कचरे का प्रयोग किया जाता हैं एरोपोनिक्स बिना किसी माध्यम के आयोजित किया जाता है। हाइड्रोपोनिक उत्पादक में बेड को निषेचित करने केा लिए लीचेट, राइजोबैक्टीरिया और पौधों की जड़े पानी से पोषक तत्वों को हटाकर मछली की मदद करती है। एक्वोपोनिक उत्पादन में मछली और पौधों के बीच सहजीवी सम्बन्ध बनाया जाता है। साथ ही इस उत्पादन तकनीक में बेड मछली के कचरे के साथ निषेचित होते हैं। पत्तेदार हरी सब्जियाँ बीन्स, मक्का, खीरे, टमाटर, स्ट्राबेरी को ऐरोपानिक्स तकनीक का उपयोग करके उगाया जा सकता है।

मुख्य विशेषताएं : एक हाइड्रोपोनिक्स प्रतिकृति ये जिसमें पौधों की जड़ों को पोषक तत्वों के घोल या धुंध के साथ छिड़का जाता है। ये परिस्थितिथिकी तंत्र को बनाये रखने में सहायता करता है। कम पानी, मिट्अी रहित कम रोशनी अथवा अन्य किसी माध्यम के बिना यह एरोपीनिक तकनीक बंद हवा में और जल पारिस्थितिक तंत्र के अनुरूप कार्य करता

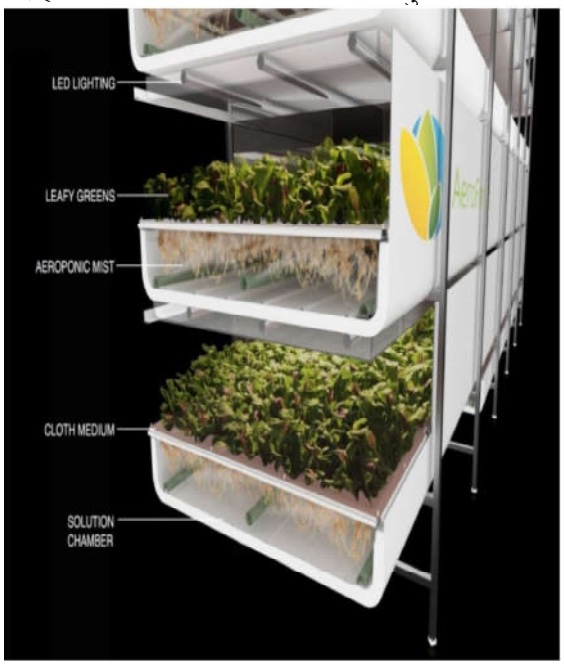

है और जिसमें पौधों का विकास अच्छा होता है। एरोपोनिक्स तकनीक में कंअेनर या ट्रे की आवश्यकता नहीं होती है। नमी को बनाये रखने के लिए इसमें धुंध और पोषक तत्वों के घोल का उपयोग करता है।

एरोपोनिक्स तकनीक में कंटेनर या ट्रे की आवश्यकता नहीं होती है नमी को बनाए रखने के लिए इनमें धुंध की पोषक तत्वों के घोल का उपयोग करता है।

खड़ी खेती के लाभ

एरोपोनिक तकनीक में अन्य तकनीकों की तुलना में कम पानी का उपयोग होता है। (सलीम इटीएल 2022) इस तकनीक में लेटयूस, हर्ब्स और विशेष साग जैसे पालक, चावल और वॉटर क्रेस आदि अच्छी तरह से उगाये जा सकते हैं।

- खड़ी खेती के द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और पुनर्प्राप्ति की जा सकती है।

• ऊर्ध्वाधर खेती में हाइड्रोपोनिक्स एरोपोनिक्स शामिल है, जिसमें तुलनात्मक रूप से कम मात्रा में मिट्टी और पानी की आवश्यकता होती है और पारंपरिक खेती की तुलना में अधिक मात्रा में सब्जियाँ पैदा होती हैं, हम ऊर्ध्वाधर खेती का अभ्यास करके प्राकृतिक संसाधनों को पुनर्जीवित करने और फिर से भरने के लिए समय प्रदान कर रहे हैं।

वर्टिकल खेती पर्यावरणीय तनाव के बावजूद सब्जी की साल भर आपूर्ति सुनिश्चित करती है क्योंकि ऊर्ध्वाधर खेती में पोषक तत्वों की आपूर्ति जैसे तापमान को नियंत्रित किया जा सकता है, जो खुले मैदान में बेहतर उपज और फसल सुनिश्चित करने में मदद कर सकती है।

• कम क्षेत्र की आवश्यकता होती है खड़ी खती में। ऊर्ध्वाधर खेती में बहु-स्तरीय डिजाइन एक नियमित खेत की तुलना में लगभग आठ गुना अधिक बढ़ते क्षेत्र प्रदान करते हैं।

ङ. शहरी विकास ऊर्ध्वाधर खेती शहरी क्षेत्र को जनसंख्या के मुद्दों को दूर करने में मदद करेगी और भोजन की आपूर्ति जारी रख सकती है।

वर्टिकल इको-फार्मिंग की स्थिरता के लिए चुनौतियाँ

वर्टिकल इको-फार्म का निर्माण वित्तीय और व्यावहारिक दोनों तरह की चुनौतियों के साथ आता है। कृषि, कृषि विज्ञान, नागरिक नियोजन, वास्तुकला, इंजीनियरिंग, अर्थशास्त्र और सार्वजनिक स्वास्थ्य सहित पादप विज्ञान और इंजीनियरिंग कौशल को ऊर्ध्वाधर इको-फार्मों कों बनाए रखने के लिए नियोजित किया जाना चाहिए। पौधों को पनपने के लिए पोषक तत्वों, पानी, प्रकाश के साथ-साथ हवा की भी आवश्यकता होती है।

• ऊर्ध्वाधर खेतों में एक पौधे के चयन से लेकर भूमि और भवन के चयन तक हर कदम पर उच्च प्रारंभिक लागत के लिए पर्याप्त राशि की आवश्यकता होती है।

• खड़ी खेती में वायु गुणवत्ता, तापमान, साथ ही सापेक्ष आर्द्रता उच्च ऊर्जा एवं इष्टतम प्रदर्शन के लिए निगरानी रखने की आवश्यकता होती है।

• इस तकनीक में केवल कुछ किस्मों का हम आर्थिक रूप से उत्पादन कर सकते हैं।

• वर्टिकल इको-फार्मिंग में विभिन्न प्रकार की जल प्रणालियों का उपयोग किया जाता है। विक सिस्टम, वाटर कल्चर, फ्लड एंड ड्रेन कल्चर, ड्रिप सिस्टम, न्यूट्रिएंट फिल्म तकनीक और एरोपोनिक कल्चर कुछ अधिक सामान्य वाटरिंग तरीके हैं। सही फ़सलों और किस्मों को चुनना एक खेत को शुरू करने या उसके विस्तार करने का पहला कदम है।

निर्माण ऊर्ध्वाधर खेत

कई कारणों से ऊर्ध्वाधर फार्म निर्माण आधुनिक ऊर्ध्वाधर खेतों में स्थापित अन्य प्रकार की ऊँची इमारतों से काफी अलग होती है जो कि निम्नवत् है-

- प्लांट रैक
- जलवायु नियंत्रण
- एरोपोनिक्स
- हाइड्रोपोनिक्स
- नियंत्रण कक्ष
- वायु प्रवाह और रिक्ति

निष्कर्ष

मृदा आधारित खेती की आवश्यकता को नई उच्च तकनीक वाली खेती तकनीकों जैसे हाइड्रोपोनिक्स, एरोपोनिक्स और एक्वापोनिक्स द्वारा बड़े पैमाने पर चुनौती दी जा रही है। जब वर्तमान में फसल उत्पादन बढ़ाने की बात हो रही है, तो ऐसे में ऊर्ध्वाधर खेती की तकनीक तेजी से लोकप्रिय हो रही है। मिट्टी- और पानी की कमी वाले क्षेत्रों और सबसे गरीब और भूमिहीनों को ऊर्ध्वाधर खेती से बहुत लाभ हो सकता है, जो फसलों को चारा मक्का, आलू, और सब्जियों जैसी अल्पकालिक फसलों को कम श्रम आवश्यकताओं के साथ बहुत छोटी जगहों में साल भर उगाने की अनुमति देता है। भारत में ऊर्ध्वाधर कृषि उद्योगों के भविष्य के विकास में जबरदस्त वृद्धि होने का अनुमान है। ऊर्ध्वाधर खेती पूरे वर्ष अधिक फसल को सक्षम करेगी। चूंकि फसलें जलवायु पर निर्भर नहीं होती हैं, इसलिए उन्हें साल भर किया जा सकता है। कुछ फलों और सब्जियों की एक साल में पांच या छह के बजाय 30 फसलें हो सकती हैं। उपभोक्ताओं को अब विशेष मौसम में उत्पादों के उपलब्ध होने का इंतजार नहीं करना पड़ेगा। ऊर्ध्वाधर खेती स्थिरता के प्रयासों के साथ-साथ पृथ्वी की अधिक से अधिक भलाई में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हाल के अध्ययनों के अनुसार, वर्टिकल फार्म पारंपरिक कृषि प्रणाली की तुलना में 70 प्रतिशत कम पानी का उपयोग करते हैं। कम लागत वाली हाइड्रोपोनिक्स और अन्य कम लागत वाली ऊर्ध्वाधर कृषि प्रौद्योगिकियों को वाणिज्यिक ऊर्ध्वाधर खेती के साथ-साथ कम

स्टार्टअप और परिचालन लागत को बढ़ाने के प्रयास में विकसित किया जाना चाहिए।

संदर्भ

- लाल आर. रेस्टोरिंग साइल क्वालिटी तो मितिगते साइल डिग्रडेशन/सस्टेनेबिलिटी । 2015;7:5875-5895.
- लम्बीं इ ऍफ़. ग्नोबल लैंड अवेलेबिलिटी : मालिसि वेर्सुस ररिकार्डो, ग्लोबल फूड सेक्युरिटी, 2012; 83-87।
- सोनी व् एंड आनंद आरुषि वर्टिकल फार्मिंग : ब्रीथिंग ग्रीन जस्ट एग्रीकल्चर, 2022; 2(10)
- सलीम मीर , नासिर बशीर, नाइकू, रेहाना हबीब कंठ, बहार, अनवर भट, ऐजाज़ नज़ीर, स शेरज़ मेहदी, ज़ाकिर अमिन, लाल सिंह, वसीम राजा, सादा , तौसीफ भट, टसुलतीं पालमो एंड तनवीर ाहनगर, फार्मा इनोवेशन , 2022, एइ-11(2): 1175-1195

Image source

- hhttps://www.climatecontrol.com/blog/hydroponic-vertical-farming-systems/
- hhttps://www.howtoaquaponic.com/designs/vertical-aquaponics-system/
- hhttps://www.howtoaquaponic.com/wp-content/uploads/2015/04/vertical-aquaponics-686x1024.jpg

❖❖

ISSN No. 2583-3146

उत्तम मसाला बीज की सुधार के उपज के लिए सिंचाई समयबद्ध

अंकिता शर्मा[1]*, रीना नायर[2], रेहान[3] एवं निशांत[4]

[1,2 एवं 4]उद्यान विज्ञान विभाग, जे.एन.के.वी.वी, जबलपुर

[3]वनस्पति विज्ञान विभाग, भाकृअनुप-आईएआरआई, नई दिल्ली

पत्राचारकर्ता : ankitasharma199511.as@gmail.com

परिचय

हमारे देश भारत को 'मसालों की भूमि' के रूप में जाना जाता है। यह विभिन्न कृषि-जलवायु और कृषि-पारिस्थितिकी दृष्टिकोणों से समृद्ध है, जो हमें बड़ी संख्या में मसालों को विकसित करने में सक्षम बनाता है। भारत के शुष्क और अर्ध-शुष्क भागों को सीड स्पाइस बाउल (राजस्थान और गुजरात) के रूप में जाना जाता है और कुल बीज मसालों के उत्पादन में 80% से अधिक का योगदान करते हैं। अपनी बड़ी घरेलू खपत और निर्यात की बढ़ती माँग के कारण बीज मसाले हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारत अपने उत्पादन का केवल 15 प्रतिशत सालाना निर्यात कर रहा है और विश्व की 50-60 प्रतिशत माँग को पूरा कर रहा है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, पंजाब, केरल, कर्नाटक और तमिलनाडु जैसे काफी क्षेत्रों पर मसाले उगाए गए। चूँकि नए क्षेत्रों में इन्हें पेश करके बीज मसालों की एक बड़ी गुंजाइश है, इसलिए नई तकनीकों को लागू करके उच्च पैदावार को भी आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। वर्तमान समय में मसालों में सबसे अधिक जीरे की खेती की जा रही है। इसके बाद धनिया, सौंफ, कलौंजी, सोआ मेथी, अजवायन, अजवाइन, करीपत्ता आदि। मौसमी फसल होने के कारण, ये बड़े पैमाने पर खाद्य फसलों के साथ और वर्षा आधारित सिंचाई की स्थिति के तहत अंतर मिश्रित फसलों के रूप में भी बड़े पैमाने पर उगाए जाते हैं। ये सभी फसलें ज्यादातर रबी सीजन में उगाई जाती हैं। भारत दुनिया में बीज मसालों का सबसे बड़ा उत्पादक, उपभोक्ता और निर्यातक देश है। यह देश में बड़ी संख्या में लोगों के लिये आजीविका और रोजगार का एक स्रोत है। जहाँ ग्रामीण आबादी इन्हें विकसित करती है तो वहीं दूसरी ओर शहरी आबादी इन्हें संसाधित कर इनका व्यापार करती है। 'मसाला' शब्द से आशय ऐसे प्राकृतिक पौधों या वनस्पति या इनके मिश्रण से है जिनका उपयोग भोजन के स्वाद व सुगंध को बढ़ाने शरीर को फुर्ती प्रदान करने व शरीर के रोग प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाने केा लिये किया जाता है।

कृषि-तकनीक अत्यधिक विशिष्ट हैं और विभिन्न फसलों के लिए अलग-अलग हैं। जल, इष्टतम बुआई का समय, बीज दर, नर्सरी प्रबंधन, इंटरकल्चरल प्रैक्टिस, खरपतवार पौध स्थानान्तरण, दूरी प्रबंधन, फसल की व्यवस्था विभिन्न कृषि-जलवायु स्थितियों में उन्नत किस्मों की इष्टतम क्षमता को महसूस करने के लिए गैर मौसमी जैसे पत्तेदार धनिया ओर मेथी आदि के उत्पादन के लिये इसकी उत्पादन तकनीक पर भी काम किया गया है। विभिन्न बीज मसाले फसलों के लिए अंतर-फसल और जैविक खेती प्रथाओं को मानकीकृत किया गया है।

विभिन्न प्राकार के बीज मसाले

उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए, किसानों द्वारा उन्नत और अभिनव उत्पादन प्रौद्योगिकियों को लोकप्रिय बनाना महत्वपूर्ण है। बीज मसालों की उत्पादन क्षमता अब तक हासिल की गई क्षमता से काफी बढ़ चुकी है। बीज मसालों की बढ़ती माँग को पूरा करने के लिये यह आवश्यक हो गया है कि अलग-अलग मौसमी क्षेत्रों और उत्पादन प्रणालियों में अलग-अलग खेती के तरीकों को पूरी योजना बना ली जाये। बीज मसाले में मूल रूप

ISSN No. 2583-3146

से कम पोषक तत्व होते हैं और बीज मसालों के लिए फसलों की आवश्यकता होती है। बीज मसालों की खेती उन क्षेत्रों तक सीमित है, जहाँ सिंचाई के लिए सीमित पानी उपलब्ध है। सिंचाई दक्षता केवल 30-35% तक उपलब्ध होती है, इसलिए केवल पानी का प्रबंधन करना अति आवश्यक है। पानी को इस तरह से प्रयोग में लाने के लिए बहुत सी पहल की गई हैं, जिससे अधिकतम उत्पादन हो सके। पानी कब, कहाँ और कैसे प्रयोग किया जाए। इस पर काम किया गया है। एनआरसीएसएस में बीज मसालों के लिए सटीक सिंचाई प्रबंधन पद्धतियाँ विकसित की गई हैं। आम तौर पर ये सभी फसलें फ्लैट बेड में उगाई जाती हैं। ये सभी विधियाँ सिंचाई के पानी को बचाने के साथ-साथ फसल के बढ़ते मोसम के दौरान धड़ क्षेत्र में उपयोगी वायुवीय परजीवियों के अनुकूल बनाये रखने में सहायक होती है। इन विधियों में बिस्तर की बुवाई बहुत अधिक प्रभावी हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप पैदावार बेहतर होती है।

बाधायें

- बीज मसाले ज्यादातर खराब फसल प्रबंधन स्थितियों के तहत उप-सीमांत किसानों के लिए सीमांत द्वारा उगाए जाते हैं।
- अजैविक तनाव की घटना अर्थात् लवणता, सूखा और ठंढ सफल उत्पादन के लिए प्रमुख बाधाएं हैं बीज मसालों की सफल उत्पादन के लिये।
- बीज मसालों का धीमी गति से बीज अंकुरण होता है और इनका प्रारम्भिक विकास बहुत धीमा होता है।
- जीरे में विल्ट, ब्लाइट और पाउडरी फफूंदी, धनिया में विल्ट और स्टेम पित्त, सौंफ में ब्लाइट और गमोसिस और मेथी में पाउडरी फफूंदी और डाउनी फफूँदी जैसी बीमारियों की उच्च घटनायें।
- विभिन्न बीज मसाले फसलों के उपलब्ध जर्मप्लास एम में परिवर्तनशीलता सीमित है।
- विभिन्न किस्मों के बीज मसालों में गुणवतता पूर्ण बीज की कमी पायी जाती है।
- उच्च डिग्री सेल्सियस वाले क्षेत्रों में उगाये जाने वाले बीज फसलों में प्रमुख की कीटो (एपिड) और रोगों (गली, पाउडर, फफूँदी और धुंधली) के प्रति प्रतिरोधक क्षमता की कमी पायी जाती है।
- उच्च उत्पादकता के साथ सूखे के लिए सहिष्णु जीनोटाइप की पर्याप्त संख्या की अनुपलब्धता।

नमी की कमी के कारण मसाले में बाधायें

बीज मसाले उष्णकटिबंधीय और उप-उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में उगाये जाते हैं। गर्मी मौसम के अंत के दौरान अधिक तापमान या असमान रूप से वितरित वर्षा के कारण मिट्टी में अपर्याप्त नमी होती है। इस फसल की खेती रबी के मौसम में संरक्षित नमी पर की जाती है जिसके लिए दो-तीन सिंचाई की आवश्यकता होती है, जो मिट्टी की स्थिति और वर्षा पर निर्भर करता है। नमी की कमी शारीरिक और चयापचय प्रक्रियाओं जैसे कि स्टामाटल क्लोजर, विकास दर में गिरावट और प्रकाश संश्लेषण में बाधा डालती है (येगनेपुर, 2017)। सिंचाई का समय निर्धारण एक व्यवस्थित तरीका है जिसके माध्यम से किसान यह तय कर सकता है कि कब सिंचाई करनी है और कितना पानी लगाना है। जलवायु संबंधी दृष्टिकोण में, सिंचाई आईडब्ल्यू / सीपीई अनुपात पर निर्धारित है।

सिंचाई पानी की ज्ञात मात्रा तब लागू होती है जब संचयी पैन वाष्पीकरण पूर्व निर्धारित स्तर तक पहुँच जाता है। धनिया पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का अध्ययन किया गया। सिंचाई धनिया की वृद्धि और उपज को प्रभावित करने वाला एक बहुत ही महत्वपूर्ण कारक है और अस्थिर तेलों की संरचना को भी प्रभावित करता है। धनिया में पानी की आवश्यकता के दो महत्वपूर्ण चरण फूल दीक्षा और बीज विकास हैं। पानी की कमी ने सभी विकास मापदंडों और उपज विशेषताओं को गंभीर रूप से प्रभावित किया, जिसमें प्रति कैरवे संयंत्र की शाखाओं की संख्या को छोड़कर शामिल था। इसके अतिरिक्त पानी की मध्यम और गंभीर कमी के कारण बीज उपज और इसके घटकों में काफी कमी आयीं शाखा, फूल और बीज निर्माण के चरणों में तीन सिंचाई के उपयोग से बीज निर्माण के चरण में सिंचाई को छोड़कर अन्य सभी नमी शासनों की तुलना में काफी अधिक बीज उपज का उत्पादन होता है। इसके अलावा जल उपयोग दक्षता सबसे अधिक थी जब बीज निर्माण चरण में सिंचाई को छोड़ दिया गया था और इसके बाद शाखाओं में तीन सिंचाई का उपयोग किया गया था। फूल और बीज निर्माण के दौरान धनिये की फसलों के लिए पानी एक महत्वपूर्ण कारक है। फसलों को संतोषजनक उपज देने के लिए पौधों की वृद्धि के विभिन्न चरणों में पर्याप्त पानी मिलना चाहिए। ऑन-फार्म जल प्रबंधन संसाधनों की अधिकता और पर्याप्त आवंटन से किया जाता है जो इष्टतम और समय पर पानी की आपूर्ति को सक्षम बनाता है और पानी के अनुचित प्रयोग को भी रोकता है। गैर जरूरी खेत पर जलवितरण से अनुचित सूचीबद्ध सिंचाई, जल वितरण, सिंचाई की गलत अवधि आदि कुछ कारक हैं जो खराब खेती जल प्रबंधन में योगदान करते हैं। किसानों को खेत पर पानी के प्रबंधन के बारे में अच्छी जानकारी नहीं हाती है विशेष रूप से सिंचाई करने के लिये कितनी और कब सिंचाई करनी है। अतः वे जब तक पानी उपलब्ध होता है तब तक सिंचाई करते रहते हैं, जिसके परिणामस्वरूप पानी की भी और योजनाओं के अन्य हिस्सों में संघर्ष होता है।

सीमित जल आपूर्ति पौधों की प्रजातियों के विकास और चयापचय गतिविधियों को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है। अप्रयुक्त भूमि को खेती के दायरे में लाकर भूमि पर बढ़ते दबाव को कम करने के लिए सिंचाई भी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक वर्ष में दोगुना उत्पादन करके उत्पादन बढ़ाना भी संभव है और इसलिए, आंतरिक बाजार के लिए अधिक भोजन बढ़ाना, खाद्य सुरक्षा और जनसंख्या की पोषण की स्थिति में सुधार करना एक चुनौती है। जिसके लिए उपज में कमी और मिट्टी के गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव से बचने के लिए सिंचाई शेड्यूलिंग यानी फसल की आवश्यकता के समय आवेदन के लिए पर्याप्त मात्रा में पानी का पालन करने की आवश्यकता है। दो सिंचाई के बीच का अंतराल विकास और उपज पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना सिंचाई के पानी को बचाने के लिए जितना संभव हो उतना चौड़ा होना चाहिए। हालांकि सिंचाई पद्धति और स्तर प्रणाली में वैज्ञानिक प्रबंधन का अभाव पाया जाता है। किसान या तो फसल के पानी की आवश्यकता से अधिक सिंचाई करते हैं, जिससे जल भराव, जलस्तर में वृद्धि, लवणता, आदि की समस्या उत्पन्न होती है। जिसके परिणामस्वरूप पौधों की शारीरिक गतिविधियों के लिए उचित समय पर पानी की पर्याप्त कमी हो जाती है। इसका पौधों की वृद्धि और विकास पर आम तौर पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

जलवायु संबंधी दृष्टिकोण के आधार पर सिंचाई

समय-निर्धारण व्यवस्थित सिंचाई समय-निर्धारण एक समय की विधि है, जिसके द्वारा उत्पादक यह तय कर सकता है कि कब सिंचाई करनी है और कितना पानी लगाना है। प्रभावी शेड्यूलिंग कार्यक्रमों का लक्ष्य पौधों को पर्याप्त पानी की आपूर्ति करना है, जबकि गहरे पर्कोलेशन या अपवाह के नुकसान को कम करना है। सिंचाई का समय निर्धारण मिट्टी, फसल, वातावरण सिंचाई प्रणाली और परिचालन कारकों पर निर्भर करता है। सिंचाई के समय निर्धारण के लिए कई दृष्टिकोणों का उपयोग वैज्ञानिक और किसान द्वारा किया गया है। सूचीबद्ध सिंचाई तकनीक मिट्टी के पानी की कमी, पौधों के आधार या पौधों के सूचकांक, जलवायु, विकास और पौधों के पानी की स्थिति पर आधारित हो सकती है। जलवायु विज्ञान

ISSN No. 2583-3146

के दृष्टिकोण से वाष्पीकरण द्वारा वाष्पीकृत पानी की मात्रा का अनुमान जलवायु विज्ञान के आंकड़ों से लगाया जाता है।

जब ईटी (ET) किसी खास स्तर पर पहुँचता है तो सिंचाई का कार्यक्रम तय होता है। दी गई सिंचाई की मात्रा या तो ईटी (ET) के बराबर होती है जलवायु दृष्टिकोण के विभिन्न तरीके जिसमें IW / CPE अनुपात विधि और पैन वाष्पीकरण विधि हैं। आईडब्ल्यू / सीपीई (IW/CPE) सिंचाई में पानी की मात्रा तब लागू होती है जब संचयी पैन वाष्पीकरण पूर्व निर्धारित स्तर तक पहुंच जाता है। व्यावहारिक उद्देश्य के लिए सिंचाई तब शुरू की जानी चाहिए। जब रूट जोन में उपलब्ध नमी की स्वीकार्य कमी पहुँच जाए। (सिंह et al., 2017)

आवश्यक ईटी प्राप्त होने पर, आवश्यकतानुसार सिंचाई की आवश्यकता और महत्वपूर्ण चरणों के आधार पर मसाला फसलों जैसे धनिया, सौंफ, मेथी आदि को बाद में सिंचाई प्रदान की जाती है।

प्रत्येक सिंचाई में पानी की निश्चित मात्रा सिंचाई अनुसूची के अनुसार प्रदान की जाती है क्योंकि यह जलवायु पैरामीटर पर आधारित होती है इसलिए आईडब्ल्यू (सिंचाई जल) की गहराई के अनुपात के आधार पर सिंचाई शेड्यूलिंग तय की गई थी।

आईडब्ल्यू / सीपीई के आधार पर विभिन्न सिंचाई कार्यक्रम द्वारा विभिन्न नमी शासन बनाए जाते हैं। (बोचलिया et al., 2011) जैसे IWCPE 0.6, 0.8,1 एवं 1,2 आदि।

$$CPE = \frac{IW}{Ratio}$$

जहाँ CPE = संचयी पैन वाष्पकरण

(Cumulative Pan Evaporation)

IW = सिंचाई जल (Irrigation Water)

संचयी पैन वाष्पीकरण मूल्यों की गणना यूएसडब्ल्यूबी वर्ग 'ए' ओपन पैन वाष्पीकरण की मदद से मापी गई थी, जिसे मौसम विज्ञान वेधशाला में स्थापित किया गया था। संचयी आंकड़ों की गणना को घटाकर की गई थी।

सिंचाई गहराई प्रबंधन दो से तीन दिनों की सिंचाई आवृत्ति पर आधारित था और पानी की मांग फसल वाष्पीकरण (ईटीसी) के आकलन के माध्यम से गणना की जाती है।

संदर्भ वाष्पीकरण (ईटीओ) के संबंध में समायोजन गुणांक का उपयोग करना।

आवश्यक मात्रा में पानी टपक सिंचाई या बाढ़ सिंचाई जैसी किसी भी सिंचाई पद्धति को अपनाकर मसाला फसल पर लगाया जा सकता है। कुछ शोध कर्ताओं ने आई डब्ल्यू/ सीपीई विधि का मेथी के फसल पर शोध किया। उन्होंने मेथी के विकास और उपज एवं आई डब्ल्यू। सीपीई विधियों के आधार पर सिंचाई के स्तर पर एक अध्ययन किया और यह पाया कि ड्रिप सिंचाई के साथ सिंचाई शासन 0.6 आईडब्ल्यू / सी पीई अनुपात ने अन्य उपचारों की तुलना में मेथी की बेहतर बीज पैदावार दी। जॉच की खोज से 0.6 आईडब्ल्यू / सीपीई अनुपात में जल उत्पादकता और जल उपयोग दक्षता सबसे अधिक पाई गई।

शर्मा et al., (2022) विकास और धनिया की उपज पर सीपीई अनुपातः आईडब्ल्यू के आधार पर सिंचाई शेड्यूलिंग के प्रभाव की जांच की (जवाहर धनिया-10) और उस सिंचाई रणनीतियों को मान्य किया जिसमें विभिन्न जलवायु सम्बन्धी बातों को ध्यान में रखते हुये आई डब्ल्यू विधियों का उपयोग किया गया। सीपीई अनुपात को वनस्पति मापदंडों को बढ़ाने के लिए उत्पादकता में सुधार के लिए तैयार किया जा सकता है और धनिया में आईडब्ल्यू विधि को अपनाकर इसे अच्छी तरह विकसित किया जा सकता है। सीपीई 0.8 में बाकी पर श्रेष्ठता दिखाई गई। यह अनुमान लगाया गया था कि किसान अपने खेतों को बिना बराबर रिटर्न के सिंचाई कर रहे थे। अनुकूलित सिंचाई पद्धति और स्तर के उपयोग के माध्यम से बचे हुये पानी का उपयोग पूरक भूमि की सिंचाई के लिए अधिक लाभदायक रूप से किया जा सकता है, इस प्रकार भूमि और जल संसाधनों का अधिक कुशल और तर्कसंगत उपयोग प्राप्त किया जा सकता है।

निष्कर्ष

जलवायु संबंधी दृष्टिकोण के आधार पर सिंचाई की यह विधि मसाला फसलों की बीज उपज, गुणवत्ता और जल उत्पादकता का आकलन करने में सहायक होगा। इस बदलती

जलवायु स्थिति में मसाला, बीज में सिंचाई अनुसूची अंततः बीज उपज में सुधार करती है।

उत्पादन में सुधार के लिये निरन्तर नयी रणनीतियाँ बनायी जा रही है, क्योंकि विभिन्न मसाला बीजों के तेल पाउडर आदि की माँग निरन्तर बढ़ रही है। प्रौद्योगिकियों को अपनाने से किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा साथ ही ग्रामीण शहरी लोगो के स्वास्थ्य में सुधार होगा।

उपरोक्त लेख विभिन्न बीज मसाले उत्पादकों के लिये मार्ग प्रशस्त कर सकता है। फसल की फूलों की अवस्था के दौरान और बाद में अधिक तीव्रता के पानी के तनाव से पीड़ित नहीं होना चाहिए।

संदर्भ

- कुमावत आर, सिंह डी, कुमावत केआर, चौधरी एम और कुमावत एस। 2017. नमी तनाव सूचकांकों द्वारा धनिया की उपज पर नमी तनाव का प्रभाव (कोरियांड्रम सैटिवम एल।) जीनोटाइप। फार्माकोग्नॉसी और फाइटोकैमिस्ट्री जर्नल; 6(4): 1493-1498.
- येगनेहपुर, एफ।, जेहताब एस.एस., घासेमी-गोलेज़ानी, के।, शफाग-कोल्वनाघ, जे।, दस्तबोरहान, एस। 2017। पत्ती और बीज आवश्यक तेल की गुणवत्ता पर पानी के तनाव, सैलिसिलिक एसिड और जैव-उर्वरक का प्रभाव, और धनिया के तेल घटक। कृषि विज्ञान के नेट जर्नल। 5. 38-47।
- बोचलिया जीसी, तिवारी आरसी, राम बी, कंटवा एसआर, चौधरी एसी। ज्योमेट्री, एग्रोकेमिकल्स और सल्फर लेवल लगाने के लिए मेथी (ट्राइगोनेला फेनमग्रेकम) जीनोटाइप्स की प्रतिक्रिया। इंडियन जर्नल ऑफ एग्रोनॉमी। 2011; 56(3):273-279.
- सिंह, आर., शिवरान, ए.सी., बम्बोरिया, एस.डी. और चौधरी, एस. 2017. वृद्धि, उपज मानकों और धनिया की गुणवत्ता पर तनाव कम करने वाले रसायनों का प्रभाव (धनिया सतीवम एल।)। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ केमिकल स्टडीज;5(6):159-161।
- लाल, जी., सिंह, आर., मेथा, आर.एस., मीना, एन.के., महेरिया, एसपी और चौधरी, एम.के. (2019)। पर अध्ययनमेथी की वृद्धि और उपज पर आईडब्ल्यू/सीपीई अनुपात और सिंचाई विधियों के आधार पर सिंचाई स्तर(ट्राइगोनेला फ़ोनियम ग्रेकेम एल.). लेग्यूम रिसर्च। (43): 838-843।
- शर्मा ए, नायर आर, पांडे एसके, अवस्थी एम, निशांत, प्रसन्ना एचजी, उइके पी। आईडब्ल्यू पर आधारित सिंचाई शेड्यूलिंग का प्रभावः धनिया की वृद्धि और उपज पर सीपीई अनुपात और तनाव कम करने वाले रसायन (धनियांड्रम सैटिवम एल।) वर जवाहर धनिया- 10.एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका में कृषि यंत्रीकरण। 2022; 53: 9421-9435।

❖❖

ISSN No. 2583-3146

ड्रैगन फ्रूट की वैज्ञानिक खेती

कुलदीप कुमार शुक्ल[1]*, कुंदन किशोर[2], जितेन्द्र कुमार शुक्ल[3] एवं गौतम प्रताप सिंह[4]

[1] एवं [4] फल विज्ञान एवं उद्यान प्रौद्योगिकी विभाग, उड़ीसा कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर

[2]केंद्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र, भा.कृ.अ.प. भारतीय बागवानी अनुसंधान, संस्थान भुवनेश्वर

[3]फल विज्ञान विभाग, चंद्र शेखर आजाद कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर

पत्राचारकर्ता : shuklahort7854@gmail.com

परिचय

ड्रैगन फ्रूट, आजकल एक महत्वपूर्ण विदेशी फल के रूप में जाना जाता है। जिसका वैज्ञानिक नाम *हाइलोकेरस अन्डेटस (Holocereus undatus)* जो कि कैक्टेसी (Cactaceae) परिवार से संबंधित पौधा है। इसमें प्रचुर मात्रा में पोषक तत्वों की उपस्थिति होती हैं। इस फल का बाजार मूल्य अधिक होने के कारण इसकी खेती भारत के विभिन्न उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में की जा रही है। एक आंकड़ा के अनुसार ड्रैगन फ्रूट की खेती 5,000 हेक्टेयर से अधिक क्षेत्रों में की जाती है। भारत के गुजरात राज्य ने इस फल का नाम 'कमलम' रख दिया गया है, क्योंकि यह कमल के फूल के समान दिखता है। जबकि विदेशों में इससे पिताया के नाम से जाना जाता है। यह फल शुष्क अर्ध शुष्क एवं वन क्षेत्रों में उगाया जा सकता है। भारत में इसकी खेती मुख्य रूप से गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा एवं उत्तर पूर्व के राज्य की जा रही है। भारत में मुख्य रूप से दो प्रकार के ड्रैगन फ्रूट की खेती की जाती है। लाल व सफेद गूदे वाला, जो की खाने में काफी स्वादिष्ट और मीठा होता है।

ड्रेन फ्रूट की किस्में

सामान्यतः ड्रैगन फ्रूट तीन प्रकार के होते हैं-

क. सफेद पिताया (White dragon Fruit)

ख. लाल पिताया (Red Dragon Fruit)

ग. पीला पिताया (Yellow dragon fruit)

अध्ययन में पाया गया है कि लाल गूदे वाला ड्रैगन फ्रूट्स ना केवल पोषक तत्वों में धनी होता है बल्कि इनका बाजार मूल्य भी अधिक होता है।

लाल गूदे वाले और सफेद गूदे वाले के पौषक तत्वों में पाये जने वाले अंतर

क्र.	गुण	100 ग्राम गूदे उपस्थित पोषक तत्व	
		लाल गूदे वाला	सफेद गूदे वाला
1.	फल का भार	220-350 मिली. ग्राम	250-450 मिली. ग्राम
2.	गूदे	55-58 प्रतिशत	70-73 ग्राम
3.	छिलका मोटाई	2.4 मिमि.	1.6 मिमी0
4.	गूदा की बनावट	सामानता ठोस	मुलायम
5.	फूल से फल बनने की विधि	28-30 दिन	28-30 दिन
6.	कुल घुलनशील ठोस पदार्थ (टी.एस.एस.) ब्रिक्स पैमाने	15-16°B	12-13°B
7.	चीनी	13.5-15	10.5-11.5 प्रतिशत
8.	प्रोटीन	0.5	0.156-0.229 प्रतिशत
9.	कार्बोहाइट्रेट	10.5-11.20	9.5-10.23 प्रतिशत
10.	केरोटीन	00- मिलीग्राम	0.005-0.0065 मिलीग्राम
11.	संग्रहित अवधि	3-5 दिन	2-3 दिन

उत्पत्ति स्थान एवं वितरण

ड्रैगन फ्रूट का उत्पत्ति स्थान मुख्यतया मेक्सिको एवं मध्य दक्षिणी अमेरिका का उष्णकटिबंधीय क्षेत्र माना जाता है। वर्तमान समय में विश्व में ड्रैगन फ्रूट की खेती 22 देशों में की जा रही है, अनुमानित उत्पादन 2.1 मिलियन टन है और क्षेत्रफल 1.11 मिलियन हेक्टेयर है। ड्रैगन फ्रूट का प्रमुख उत्पादक करने वाला देश वियतनाम, चीन, इंडोनेशिया, थाईलैंड, ताइवान, मलेशिया, भारत और अमेरिका है।

ड्रैगन फ्रूट का उपयोग एवं इसके औषधीय गुण

- यह रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है अतः इस फल को इम्यून बूस्टर भी कहा जाता है।
- ड्रैगन फ्रूट हृदय के लिए काफी लाभदायक है, साथ ही इसमें विटामिन, एस्कोरबिक एसिड, एंटी ऑक्सीडेंट प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जिससे ऑक्सीडेटिव स्ट्रेस का प्रभाव कम होता है। इसके सिववाय ड्रैगन फुट में के बीच में ओमेगा-3 और में गाना एसिड पाए जाते हैं, जो हृदय को स्वस्थ रखने में काफी मदद करते हैं।
- यह फल कैंसर जैसे घातक बीमारी को कम करने का उत्तम स्रोत है। विभिन्न शोधों में यह पाया गया है कि कि ड्रैगन फ्रूट कैंसर के उपचार के लिए उत्तम स्रोत है क्योंकि इसमें एंटी ऑक्सीडेंट और एंटी इन्पलेमेटरी पाए जाते हैं।
- यह शरीर में कोलेस्ट्रॉल को नियंत्रित करता है। यह नेशनल सेंटर फॉर बायोटेक्नोलॉजी इंफॉर्मेशन द्वारा प्रकाशित एक शोध पत्रिका में बताया गया गया है कि लाल गूदे वाला ड्रैगन फ्रूट का सेवन करने से उसमें उपस्थित टोटल कोलेस्ट्रॉल, ट्राइग्लिसराइड और लिपॉप्रोटीन कोलेस्ट्रॉल को कम करने के उत्तम स्रोत हैं।

भारत में ड्रैगन फ्रूट की खेती की माँग बढ़ने का मुख्य उद्देश्य

ड्रैगन फ्रूट के आकर्षक और औषधीय गुण ही इसके माँग का प्रमुख कारण है, कोविड-19 महामारी के विकराल समय में यह फल काफी लाभदायक साबित हुआ इस फल में उपस्थित एंटी ऑक्सीडेंट खनिज, लवण, विटामिन, मिनरल्स फाइबर जो हमारे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने हैं, इसलिए इस फल को इम्यून बूस्टर भी कहा जाता है, साथ ही यह डेंगू जैसी बीमारियों के लिए भी लाभकारी है। भारतीय बाजार में ड्रैगन फ्रूट का औसतन कीमत लगभग रू0 100 है। प्रधानमंत्री द्वारा किसानों की दोगुना आय करने की योजना के लिए ड्रैगन फ्रूट की खेती उपयुक्त है, इसकी खेती आसानी से की जा सकती है और इसमें कीट और रोग बहुत कम लगते हैं, साथ-साथ विभिन्न प्रकार के बीमारियों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता भी पाई जाती है और बहुत कम समय में व्यवसायिक उत्पादन शुरू हो जाता है जो किसानों की आमदनी के लिए काफी उपयुक्त है।

जलवायु

ड्रैगन फ्रूट मुख्यतया उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में उगाया जाता है। इसकी खेती के लिए औसतन तापमान 20 से 30 डिग्री सेल्सियस उपयुक्त माना जाता है। इसकी खेती सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है, लेकिन अधिक विकास और पैदावार के लिए जल निकासी वाली बलुवाई मिट्टी सर्वाधिक उपयुक्त है। जिसमें प्रचुर मात्रा में जैविक कार्बनिक तत्व पाए एवं जिसका पीएच मान औसतन 5.5 से 7.5 तक हो ड्रैगन की खेती के लिए उत्तम माना जाता है।

प्रवर्धन एवं पौध लगाने की विधि

ड्रैगन फ्रूट का प्रवर्धन सामान्यता लैंगिक एवं अलैंगिक विधि से किया जाता है, व्यवसायिक खेती के लिए कटिंग प्रवर्धन विधि प्रचलित है, लेकिन इसे बीजों द्वारा भी लगाया जा सकता है। बीज से लगाए गए ड्रैगन फ्रूट अधिक समय बाद फल प्रदान करते हैं जो किसानों के आर्थिक दृष्टिकोण से लाभदायक नहीं है। कटिंग विधि द्वारा प्रवर्धन करने के लिए गहरे हरे रंग की परिपक्व तने के कटिंग का प्रयोग करते हैं। जिसकी लंबाई 15 से 25 सेंटीमीटर होते हैं।

प्रवर्धन सामग्री का मिश्रण

मिट्टी, गोबर की खाद, वर्मीकम्पोस्ट और बालू के 1:1:1:1 के अनुपात को थैले में भरकर या क्यारियाँ बनाकर लगाना चाहिए, 3-4 महीना के बाद ड्रैगन फ्रूट की प्रवर्धन कटिंग को नर्सरी से ड्रैगन फ्रूट के बगीचे में स्थानांतरण कर देते हैं।

रोपण अंतरण या दूरी

ड्रैगन फ्रूट को अधिक उत्पादन के लिए 2.5×25 मीटर के घनत्व पर लगाया जाता है। एक हेक्टेयर में लगभग 1333 हिल् को समायोजित किया जाता है। प्रत्येक हिल में 4 पौधे लगाए जा जाते हैं, जो इस प्रकार से लगीाग 5333 पौधे प्रत्येक हेक्टेयर लगाए जा सकते हैं। गड्ढे का आकार 60×60×60

ISSN No. 2583-3146

सें.मी. रखते हैं। इन गड्ढों को कम्पोस्ट, मृदा व 100 ग्राम सुपर फॉस्फेट मिलाकर भर दिया जाता है। ड्रैगन फ्रूट का रोपण के लिए उपयुक्त समय जुलाई-अगस्त माना जाता है क्योंकि इस समय मिट्टी में पर्याप्त मात्रा में नमी मौजूद रहती है।

खाद एवं उर्वरक

ड्रैगन फ्रूट के लिए उर्वरक की आवश्यकता मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों पर निर्भर करती है, इसलिए उर्वरक का प्रयोग करने से पहले मृदा परीक्षण अवश्य करना चाहिए। ड्रैगन फ्रूट को वृद्धि और उपज के लिए अधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। 1-2 वर्ष पौधों के लिए नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश (50:50:60) ग्राम प्रति पौधों एवं 3 वर्ष के या इससे अधिक आयु के पौधों के लिए 200:200:250 ग्राम (एन.पी.के.) प्रति पौधे को मई (फूलों से पहले), अगस्त (तीसरी पलश) और दिसंबर में आवश्यकता होती है। ड्रैगन फ्रूट में औषधीय पोषक तत्व अधिक पाए जाने की वजह से सूक्ष्म पोषक तत्व की अधिक मात्रा प्रयोग करना चाहिए।

सिंचाई

ड्रैगन फ्रूट को अन्य फसलों की तुलना में कम पानी की आवश्यकता होती हैं, क्योंकि यह कैक्टस परिवार का पौधा है। इसकी पत्तियों में रंध्रावाकाश नहीं पाई जाती हैं। इसमें पत्तियाँ तने के रूप में रूपांतरित होते हैं, रोपण के समय, फूल आने के समय और फल के विकास के समय, मौसम शुष्क और गर्म होने पर हल्की सिंचाई कर देना सर्वोत्तम है, जिससे फल का रंग आकर्षक फल का विकास और उसमें उपस्थित पोषक तत्वों की मात्रा अच्छी होती है और फल आकार में भी बड़े होते हैं। इसके लिए सिंचाई की सबसे उपयोगी विधि बूँद-बूँद पद्धति का प्रयोग लाभकारी रहता है।

फलों की तुड़ाई

ड्रैगन फ्रूट मुख्यतया दूसरे वर्ष से फल देना शुरू कर देते हैं, लेकिन व्यवसाय के लिए फल की शुरूआत 3 साल में होती है, जिससे पेड़ों का विकास सर्वोत्तम और फल धारण करने की क्षमता अधिक हो जाती है, सामान्यतया मई और जून में फूल आना शुरू हो जाते हैं और फल अक्टूबर तक लगे रहते हैं। फूल आने के एक महीना बाद फल की तुड़ाई कर लेते हैं। एक 1 वर्ष में लगभग 4 से 5 बार तुड़ाई करते हैं। ड्रैगन फ्रूट एक क्लाइमेटिक फल है इसलिए फलों की तुड़ाई पकने की अवस्था पर करना चाहिए, जिससे फलों में उपस्थित पोषक तत्व अधिक और फल का स्वाद सर्वोत्तम होता है।

कटाई और छटाई (ट्रेनिंग और प्रूनिंग)

ड्रैगन फ्रूट कैक्टेसी परिवार पौधा का सदस्य है, जिसकी वृद्धि और विकास के लिए कटाई और छटाई की आवश्यकता होती है, क्योंकि उसमें बहुत सारे उपशाखाएं निकलते रहते हैं। जो वृद्धि को कम कर देते है, जिससे विकास, उत्पादन और उत्पादकता प्रभावित होती है। ड्रैगन फ्रूट के पौधों को ऊपर वृद्धि के लिए लोहे का छड़ या लकड़ी का टुकड़ा और सीमेंट का टुकड़ा लगा देते हैं, इसके बाद इसके पादप तनों को गोलाकार ढांचे (फ्रेम) तक बढ़ने दिया जाता है। उसके बाद ऊपरी शीर्ष भाग को काट देना चाहिए, ताकि उप शाखाएं निकल सके पौधे के निचले सिरे की उपशाखाओं को समय समय पर हटाते रहना चाहिए, जिससे गोलाकार ढांचा (फ्रेम) को एक सुनियोजित आकार प्राप्त हो सके। रोग ग्रसित और एक दूसरे को क्रॉस करती शाखाओं को भी हटा देना चाहिए। ड्रैगन फ्रूट में समय समय पर ट्रेनिंग और प्रूनिंग करते रहना चाहिए, जिससे अच्छे बड़े गुणवान फलत प्राप्त होते हैं।

ड्रैगन फ्रूट में कीट, रोग, और विकार का प्रभाव और निदान

सामान्यतः ड्रैन फ्रूट में कीट, रोग ओर बीमारी का प्रकोप कम होता है। गुणवत्ता युक्त फल और बेहतर उत्पादन के लिए आवश्यक है कि बाग की नियमित रूप से देखरेख करें, अगर कुछ रोग और कीट का प्रभाव होता है तो उसके उपचार के लिए सावधानियाँ बरतनी चाहिए। मुख्य रूप से इसमें एंथ्रक्नोज रोग व थ्रिप्स कीट का प्रकोप देखा गया हैं एंथ्रेक्नोज रोग के नियंत्रण के लिए मैन्कोजेव दवा के घोल का 0.25 प्रतिशत की दर से छिड़काव करें। थ्रिप्स के लिए एसीकेट का 0.1 प्रतिशत की दर से छिड़काव करना चाहिए।

निष्कर्ष

ड्रैगन फ्रूट एक विदेशी फल है, जो देखने में बहुत ही आकर्षक और उच्च पोषण तत्व से भरपूर है साथ ही साथ बहुत कम समय फल धारण कर लेता है जिससे किसानों को दो वर्ष में आय प्राप्त होने लगती है। स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या को लेकर यह फल बहुत हितकारी है इसकी मुख्य विशेषता है कि वर्ष में 4-5 फलत होता है जो अन्य फल की तुलना में आर्थिक दृष्टि से कभी लाभदायक है। ड्रैगन फ्रूट का बाग एक बार स्थापित कर देने के उपरांत 15-20 वर्ष फल प्राप्त किया जा सकता है। भारत जैसे विशाल महानगर में आने वाले समय में ड्रैगन की मांग को देखते हुए और साथ ही किसान और उद्यमी

ISSN No. 2583-3146

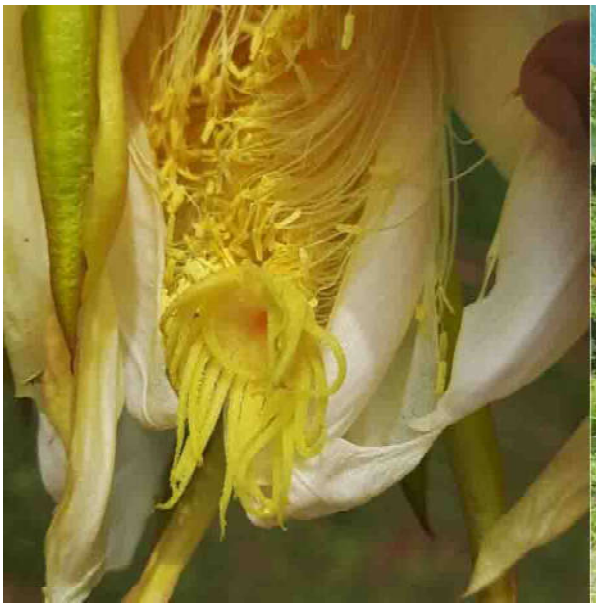

ड्रैगन फ्रूट पुष्प

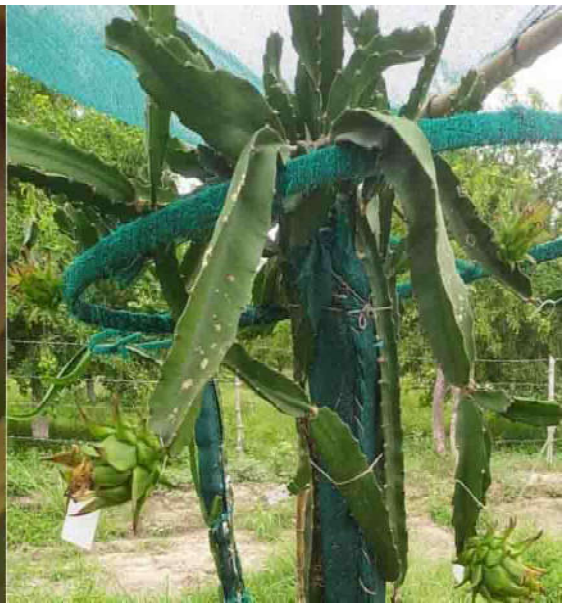

फलत ड्रैगन फ्रूट साथ ट्रेनिंग प्रणालियाँ

दोनों का कार्य काफी कारगर सिद्ध हुआ होगा। इस लेख का मुख्य उद्देश्य यह है कि किसानों को साधारण, सरल और आसान शब्दो में ड्रैगन फ्रूट की जानकारी प्रदान करना और इस फल के प्रति जिज्ञासा को बढ़ाना और फल की गुणवत्ता को प्रस्तुत करना।

❖❖

ISSN No. 2583-3146

किवी फल की खेती

रिम्पिका[1]*, मनीष ठाकुर[2], शिल्पा[3], शबनम[4] एवं दिशा ठाकुर[5]

[1,2,3 एवं 5]फल विज्ञान विभाग

[4]मृदा विज्ञान एवं जल प्रबंधन

डॉ. यशवंत सिंह परमार औद्योगिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय नौणी सोलन, बागवानी और वानिकी कालेज, थुनाग

पत्राचारकर्ता : rimpikathakur1989@gmail.com

परिचय

कीवी फल एक बहुत ही महत्वूर्ण फल है, यह फल देखने में बाहर से हलके भूरे रंग का, रोएंदार व आयातकार रुप में चीकू फल की तरह होता है। फल का गुदा हरे रंग का होता है और इसके अंदर छोटे-छोटे काले रंग के बीज होते हैं पर अब ऐसी किस्मे भी आ गयी है, जिनका गुदा सुनहरे रंग का होता है। इसे 'Chinese Gooseberry और Horticulture Wonder of New Zealand भी कहा जाता है। चीन में इस फल का जन्म हुआ था और 19स्वी सदी में न्यूजीलैण्ड में इसकी व्यवसायिक खेती की गयी थी।

भारत में कीवी को 1960 में लाया गया और इसे लालबाग बंगलुरु में लगाया गया था, पर वहाँ इसमें कामयाबी नहीं मिल पाई क्योंकि बाद में शोध में पाया गया की यह मध्यपर्वतीय और पहाड़ों के निचले क्षेत्रो में पाया जाने वाला फल है। इसके बाद सन् 1963 में इसे हिमाचल प्रदेश के शिमला जिले में लगाया गया था, जहां पर 1969 में इसमें फल आ गए थे। फिर इस फल को हिमाचल के दूसरे कई कृषि जलवायु क्षेत्रों में परखा गया। वैज्ञानिको ने निष्कर्ष निकाला की इस फल कि सफल पैदावार के लिए शीत घण्टों की आवश्यकता होती है, जो की 700 -800 घंटे से नीचे होने चाहिए। असल में अगर हम अन्य शीतोष्ण फलों की बात करे जैसे की सेब, आलूबुखारा नाशपाती, चेरी और अन्य गुठलीदार फल, इन सभी को शीत घंटो की जरूरत होती है, किसी को कम तो किसी को ज्यादा। इन शीत घंटो में ये सभी फल अपने पत्ते गिरा चुके होते हैं । आज अगर हम बात करे तो ये फल हिमाचल के अलावा अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मणिपुर , सिक्किम, और उत्तराखण्ड आदि इलाको में पाया जाता है। एक ऐसा भी वक्त आया था जब यह फल इतने गुणों के बावजूद अपनी चमक बाजार में खो चुका था, पर कुछ वर्षो में इस फल कि माँग इतनी बढ़ गई है कि इसकी माँग पूरी करना मुश्किल है। फल की माँग तो है ही है पर पौधों की माँग उससे भी ज्यादा है। हमने ये देखा है कि हिमाचल में बाहरी राज्यों से भी कीवी के पौधों कि भारी मात्रा मे माँग आती है।

कीवी फल पोषक तत्वों और एंटीऑक्सीडेंट से भरा हुआ होता है। इसमें विटामिन C (300mg Ascorbic acid/ 100g) होता हैं, और इसमें प्रचुर मात्रा में विटामिन E, A, फोलेट, कैल्शियम, मैग्नीशियम आदि होते हैं। कीवी में एंटीऑक्सीडेंट होने के कारण ये शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता हैं, यानि शरीर को बीमारियों से बचाने में मदद करता है।

कीवी फल का पौधा एक बेलदार पर्णपाती पौधा होता है। कुछ वर्षो के बाद इसे सहारे की जरूरत होती है। कीवी में नर और मादा की किस्मे अलग अलग होती है। मादा में फल लगने के लिए बाग में नर किस्म का होना जरुरी होता है। नौ मादा पौधों के लिए एक नर के पौधे सिफारिश कि जाती है। यूं तो परागण कीटो से होता है पर अच्छी फसल के लिए हम हैंड पोलिनेशन की सिफारिश करते हैं। मधुमक्खी कीवी के मामले में इतनी असरदार नहीं होती क्यूंकि फूल इतने आकर्षक नहीं होते । अब हम अगर किस्मों की बात करे तो एलिसन किस्म भारत में सबसे ज्यादा पसंद की जाने वाली किस्म है। यह अधिक पैदावार देने वाली मध्य पकने वाली किस्म है। फल का भार लगभग 60-90 ग्राम होता है। इस किस्म को परागित करने के लिए नर एलिसन का प्रयोग ही किया जाता है। नर किस्म के फूल में फल का अभाव होता है। यह किस्म 700 से 1,600 मीटर की ऊंचाई वाले क्षेत्र के लिए अनुकूल होती है ।

किस्में

कीवी की कई सारी किस्में है, जिनमें हेवर्ड, एलिसन, मॉन्टी आदि है। इसके अतिरिक्त कुछ प्रमुख नयी किस्में विकसित की गयी है, जिनमें गोल्डेन सनशाइन एन्जाग्रीन आदि है।

ISSN No. 2583-3146

हेवर्ड : अगर दुनिया की बात करें तो, हेवर्ड सबसे ज्यादा उगाई जाने वाली किस्म है। फल बड़े आकार वाला 90 ग्राम से 110 ग्राम तक होता है। यह अधिक ऊँचाई में लगने वाली किस्म है। हेवर्ड में पैदावार कम आती है, तभी इसका फल काफी बड़ा होता है। इसके लिए नर किस्म के तौर पर तमौरी को लगाया जाता है। इसके अलावा अबॉट, मोंटी और ब्रुनो किस्में भी आप ऊगा सकते हैं।

हेवर्ड

एलिसन

मोंटी

ब्रूनो

एबाट

पौध लगाने की तैयारी

पौधों को सर्दियों में लगाया जाता है। इसके लिए 1 x 1 x 1 मीटर का गड्ढा खोदें, उसमे सड़ी गली गोबर की खाद और 1/2 kg फॉस्फोरस ज़रूर डाले। यह एक बेलदार पौधा है इसे सहारे की ज़रूरत होती है। जिसे अंग्रेजी में ट्रेनिंग सिस्टम कहते हैं। यूँ तो इसे बहुत सारे तरीको से ट्रैन किया जाता हैं, पर जिसकी हम सिफारिश करते है वह है टी बार टेक्नीक। पौधों को 4x6 मीटर की दुरी पर लगाया जाता है। पौधों की पौधों से और पंक्ति से पंक्ति की दुरी 4 x 6 मीटर होनी चाहिए। कुछ सालो बाद जब पौधे बड़े हो जायेंगे इन पोधो को टी बार टेक्निक के सहारे से उगाया जाता है। पौधों के शुरुआत से अंत तक और बीच बीच में टी आकार के लोहे के खम्बे लगाए जाते हैं, और एक खम्बे से दूसरे खम्बे होते हुए अंतिम तक 5 तारे ले जाई जाती हैं, जिससे की एक छत सी या जंगल सा बन जाता है।

जेस्प्री गोल्डन

गोल्डन सनसाइन

एन्ड्रा ग्रीन

एन्जारेड

कांट-छांट

कीवी की बेलो और शाखाओं को इन्ही पर उगने दिया जाता हैं। इस विधि से फल ज़मीन के ऊपर लटके रहते हैं और सीधी धूप से बचे रहते हैं। शाखाओं को 1.8 मीटर की लम्बाई तक रखा जाता है, जिससे कि प्रूनिंग और तुड़ान जैसे काम करना आसान होता हैं। पाँच तारो के बीच की दुरी 30 cm रखी जाती है, जिससे की क्रॉस आर्म की लम्बाई 1.5 मीटर से ज़्यादा हो। यह देखा गया है कि कुछ बागवान बहुत हल्का लोहा इस्तेमाल करते है, जिससे की पूरा ढ़ाँचा कुछ सालो बाद

ISSN No. 2583-3146

गिर जाता हैं, जिससे की बहुत नुकसान होता है। एक वयस्क पौधा एक क्विंटल तक भी पैदावार दे देता है, और जब ऐसे अनेको पौधे एक साथ किसी एक ढ़ाँचे के सहारे अपने पूरे वज़न को उसके ऊपर रखेंगे तो कुल मिलाकर बहुत ज्यादा वज़न हो जाता हैं।

प्रूनिंग : प्रूनिंग की जानकारी कीवी में बहुत ही ज्यादा जरूरी हैं। इसका मकसद अधिक वनस्पति बढ़ोतरी को रोकना है, और अधिक फल लेना है। पौधों की प्रूनिंग सुप्तावस्था यानि की दिसम्बर-जनबरी में की जाती है। फल साल की बड़ी यानि एक साल पुरानी बेल पर इस साल बड़ी शाखा पर लगता है, और वो भी तीसरी से बाहरवीं आँख पर लगता है। अतः प्रूनिंग के समय अधिक बड़ी हुई शाखा को इस ढंग से काटे कि उस पर 6 आँख से ज्यादा उस शाखा पर न रहे। उर्वरकों की हम अगर बात करे तो ये हर राज्य के हिसाब से वैज्ञानिकों की अलग अलग सिफारिशों की तरह ही डालनी चाहिए। साथ ही जरुरी है की फॉस्फोरस और पोटाश को इकट्ठे तोलिये बनाते समय डालें और नाइट्रोजन को दो भागो में डालें यानि आधा फूल खिलने से थोड़ा दिन पहले आधा फल लगने के कुछ दिन बाद।

सिंचाई : कीवी में शाखायें बहुत ज्यादा बढ़ती हैं, और इसके पत्ते भी बड़े होते है, जिसके कारण ट्रांस्पिरेशन ज्यादा होती हैं और पत्तो से जो पानी वाष्प बनके उड़ जाता है। इसमें सिंचाई की बहुत जरुरत होती हैं। छोट्टे पौधों में सप्ताह में 2 या 3 बार सिंचाई करें और पूर्ण विकसित पौधों में 5 या 6 दिन बाद सिंचाई करें। पूर्ण विकसित पौधों को हर दिन 80-100 लीटर तक पानी की जरूरत होती है। टपक सिंचाई से 20 प्रतिशत पैदावार बढ़ती है और 20 -25 प्रतिशत तक पानी का बचाव होता है।

पौधों को तैयार करना

क. कटिंग

ख. मूलवृन्त के ऊपर ग्राफ्टिंग करना

फूल विरलन : हेवर्ड के अलावा सारी किस्मों में फल बहुत अधिक लगते हैं, जिसके कारण फलों का विकास नहीं हो पाता और बाजार में अच्छे दाम नहीं मिलते। वैसे तो रसायनों के इस्तेमाल से विरलन बहुत आसान और सस्ता होता है, पर हैंड थिनिंग (हाथ से फूलों का विरलन) बहुत ही कारगर सिद्ध करता हैं। कीवी फल में उत्तम गुणवत्ता के फल प्राप्त करने हेतु 4-6 फूल की लताएँ प्रति फल देने वाली शाखा पर रखें।

फलों का तुड़ान : कीवी की आर्थिक उपज पौधे लगाने के 4-5 साल बाद मिलना आरम्भ होता है। प्रति बेल से 25 से 100 किलोग्राम तक पैदावार प्राप्त की जा सकती है। कीवी फल की खास बात यह है कि यह बाजार में तब आता है जब दूसरे फल बाज़ार में काफी कम होते हैं।

तुड़ान के पैमाने (परिपक्वता सूचकांक) : फलों का तुड़ान फूल खिलने से 190 4 से 200 4 तक किया जाता है। इनमें से एबोट 190+5 दिन, मॉन्टी 194+5 दिन और हेवर्ड जो की सबसे पछेती किस्म है- 201+5 दिन के अंतराल के बाद तोड़ा जाता है। फलों के तुड़ान के वक्त टी.एस.एस 6.2 Brix (कुल घलनशील ठोस पदार्थ) के करीब होना चाहिए। फूलों का तुड़ान जब भी किया जा सकता हैं, जब रगड़ने के उपरांत रोएं आसानी से निकल जाएं।

फल विपणन

मार्केटिंग के लिए फलों की ग्रेडिंग करना बहुत आवश्यक होता हैं। 'ए' ग्रेड के फल 100 ग्राम से अधिक वज़न के होने चाहिए। 'बी' ग्रेड के फूल 70 से 100 ग्राम और 'सी' ग्रेड के फल <70 ग्राम से कम वज़न वाले लिए जाते हैं। फूलों को 1 किलो 2 किलो और 5 किलो के कार्टन में बंद करके बाज़ार में भेजा जाता है।

भण्डारण

खुले में फलों को 6 से 7 हफ्तों तक रखा जा सकता हैं और नियंत्रण भण्डारण में 0 डिग्री सेल्सियस तापमान और 90 प्रतिशत निरपेक्ष आद्रता रिलेटिव हुमिडीटी में फलों को 4 से 6 महीनों तक रखा जा सकता है।

निष्कर्ष

यद्यपि कीवी एक विदेशी फल है परन्तु इसके पोषक और औषधीय गुणों के कारण इसकी व्यावसायिक माँग बहुत तीव्र गति से बढ़ रही है। भारत में भी इस फल को सफलतापूर्वक इसकी खती की जा रही है। परन्तु इसकी माँग को पूरा करना उतना मुश्किल होता जा रहा है। यदि किसानों को कीवी के बारे में और प्रशिक्षित किया जाय तो निश्चित रूप से इसकी माँग को पूरा किया जा सकता है। साथ ही किसान इसे बाजार में बेचकर अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ कर सकते हैं।

❖❖

ISSN No. 2583-3146

पब्लिशर्स : स्निग्धा हल्धर

सम्पादक : प्रो. (डॉ.) उमेश थापा

कवर एण्ड लेआउट : नीरज गुप्ता

प्रूफ रीडिंग : प्रखर खरे

टाइप सेटिंग : रजत श्रीवास्तव

प्रशासनिक और विपणन कार्यालय

3/3, डूमण्ट रोड नथानी हॉस्पिटल के पास, प्रयागराज-211001 (उ. प्र.)

मो. 9452254524

वेब : saahasindia.org

ईमेल - contact.saahas@gmail.com

स्क्रिप्शन : www.saahasindia.org/Magazine.php

पत्राचार कार्यालय

5, विवेकानन्द मार्ग, जानसेनगंज, प्रयागराज-211003 (यू.पी.)

ईमेल - krishiudyandarpan.en@gmail.com

●

© **प्रकाशक**

पब्लिशिड बाई

सोसाइटी फॉर एडवांसमेन्ट इन एग्रीकल्चर, हॉर्टिकल्चर एण्ड एलाइड सेक्टर (साहस),

प्रयागराज, (यू.पी.)

मुद्रक

एकेडेमी प्रेस, 845/602, दारागंज, प्रयागराज-211006

All right reserved. No part of this magazine can be printed in whole or in part without the written permission of the publisher.

The editors and publisher of this magazine do their best to verify the information published, but do not take any responsibility for the absolute accuracy of the information published.

All disputes subjects to Prayagraj (UP) Jurisdiction